संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-37, अप्रैल-मई 2001

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl.com
eklavyahoshangabad@bigfoot.com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: साल्वाडोर डाली द्वारा सन् 1931 में बनाई गई ऑयल पेंटिंग – 'सोफ्ट वॉचिस' या 'द परसिसटेंस ऑफ मेमरी'। इस सदी की शुरुआत में आंइस्टाइन के सापेक्षता के सिद्धांत के प्रतिपादन के बाद समय और दूरियां आपस में गुंथ गए थे – उनका स्वतंत्र अस्तित्व एक तरह से खत्म हो गया। भौतिक शास्त्र में काफी उथल-पुथल का दौर था यह। इन चर्चाओं का असर केवल विज्ञान तक ही सीमित नहीं रहा, अन्य कलाओं पर भी काफी प्रभाव पड़ा। डाली की इस पेंटिंग में उस दौर की छाप झलक रही है। गुरुत्व व सापेक्षता पर विस्तृत लेख पृष्ठ 29 पर।

पिछला कवर: अक्सर फूल पंखुड़ियों की वजह से तो खूबसूरत दिखते ही हैं, परन्तु बहुत से फूलों में 'करोना' चार चांद लगाकर इस खूबसूरती में इज़ाफा कर देता है। हल्दी कुंकू के फूल में लाल रंग की पंखुड़ियों के साथ पीला करोना यही भूमिका अदा कर रहा है। बहुत से उदाहरणों समेत करोना पर विस्तृत लेख पृष्ठ 75 पर। फोटो – के. आर. शर्मा।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***मैन्स व्यू ऑफ द यूनिवर्स:*** *गेराल्ड इ. ट्यूबर; प्रकाशक: क्राउन पब्लिशर्स न्यूयॉर्क।* ***द क्वेस्ट फॉर लोंगिट्यूड:*** *विलियम जे. एच. एंड्र्यूस; प्रकाशक: हार्वर्ड कॉलेज।* ***आइंस्टाइन्स मिरर;*** *टोनी हे एंड पेट्रिक वॉल्टरर्स; प्रकाशक: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।* ***प्रेक्टिकल फिज़िक्स:*** *जेरी डी. विल्सन; प्रकाशक: सोंडर्स कॉलेज पब्लिशिंग।* ***प्रिंसिपल्स ऑफ एनेटॉमी एंड फिज़ियोलॉजी:*** *गेराल्ड जे. टोराटोरा, सैंड्रा रेनॉल्ड्स ग्रेबोव्स्की; प्रकाशक: हार्पर कोलिन्स कॉलेज पब्लिशर्स।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सदस्यता शुल्क बढ़ रहा है

संदर्भ का सदस्यता शुल्क इस अंक से बढ़ रहा है।

नया शुल्क इस तरह होगा

एक प्रति का मूल्य 15 रुपए।

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	द्विवार्षिक	त्रैवार्षिक
व्यक्तिगत/स्कूल	75 रुपए	140 रुपए	200 रुपए
अन्य संस्थाएं	150 रुपए	280 रुपए	350 रुपए

30 जून, 2001 तक सदस्यता पुरानी दरों पर ही मिलेगी।

यानी
एक साल के 50 रुपए,
दो साल के 100 रुपए
और तीन साल के 150 रुपए।

जल्दी कीजिए। सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भी भेजा जा सकता है। ड्रॉफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

30 जून, 2001 तक शुल्क भेजिए, छूट का फायदा उठाइए।

गुरुत्व की बारीक बातें 29

यदि हम दो स्थानों के बीच अलग-अलग रास्तों से यात्रा करें तो हमें अलग-अलग दूरी तय करनी होगी यानी दूरी मार्ग-निर्भर है, यह हमारा रोज़मर्रा का अनुभव है। प्रकाश के सार्वभौमिक वेग के कारण दूरी और समय परस्पर तुल्य हैं। इसलिए दो घटनाओं के बीच समय का अंतराल भी मार्ग-निर्भर होगा। यदि एक अंतरिक्ष यात्रा का समय अंतरिक्ष यात्री की घड़ी में पढ़ा जाए और पृथ्वी पर खड़े उसके साथियों की घड़ी में पढ़ा जाए तो ये समय अंतराल अलग-अलग होंगे क्योंकि इन दोनों प्रेक्षकों ने दो घटनाओं – यात्रा की शुरुआत और अंत के बीच अलग -अलग मार्ग अपनाए हैं। यानी कि दूरी की तरह समय भी मार्ग निर्भर है। अर्थात आकाश व समय दोनों के मापन सापेक्ष व प्रेक्षक निर्भर हैं। दरअसल जो चीज़ प्रेक्षक से स्वतंत्र और अपरिवर्तनशील है वह इन दोनों के गठबंधन से प्राप्त स्पेस-टाइम या दिक्काल है। 20वीं सदी के शुरुआती सालों में प्रकाश, आकाश और समय को लेकर यह एक नए किस्म का संश्लेषण था।

इतिहासकारों के लिए चार सवाल 43

अक्सर एक हिन्दुस्तानी के ख्यालों में अपने देश के अतीत की महान गरिमापूर्ण छवि बनी होती है। अपने देश के अतीत के वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को लेकर लोगों के पूर्वाग्रह भी होते हैं। इतिहासकारों को चाहिए कि वे उपलब्ध स्रोतों की निष्पक्ष भाव से व्याख्या करें, विश्लेषण करें और सच्चाई को लोगों के सामने रखें। आखिर विज्ञान का इतिहास भी तत्कालीन समाज की सोच, तकनीकी ज्ञान के बारे में खुलासा करता है। विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के विकास का अध्ययन भी उतना ही ज़रूरी है जितना किसी समाज के विकास का अध्ययन करना।

घड़ी जिसने 59

17वीं और 18वीं सदी में खुले समुद्र में देशांतर रेखा का निर्धारण कर पाना खासा कठिन काम था। कुछ विधियां तो थीं लेकिन बेहद जटिल। सरल और व्यावहारिक विधियों की तलाश के लिए ब्रिटेन ने 20 हज़ार पौंड का इनाम घोषित किया था। इस इनाम की वजह से कई विधियों की खासी तरक्की हुई। इन विधियों में एक विधि थी टाइमकीपर विधि जिसने इस इनाम को जीता। एक घड़ी इस मुकाम तक कैसे पहुंची पढ़िए इस बार।

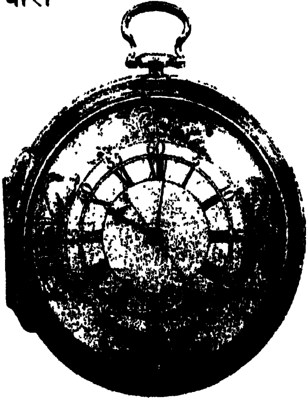

अंधा सांप 93

बरसात के दिनों में आपने केंचुए के रंग-रूप वाले इस जीव को ज़रूर देखा होगा। यह सांप है फिर भी सांप की तरह अपनी डरावनी तस्वीर पेश नहीं करता। इसकी शल्कों से ढंकी आंखों को लैंस की मदद से ही देखा जा सकता है। सांप होते हुए भी यह कई मामलों में अपनी बिरादरी में अनोखा है।

शैक्षिक संदर्भ

अंक: 37 अप्रैल–मई 2001

इस अंक में

आपने लिखा 6

एक वैज्ञानिक का सफर 11
वसुमति धुरू

अपने हाथ विज्ञान 23

गुरुत्व की बारीक बातें 29
नरेश दधीच

ज़रा सिर खुजलाइए 40

इतिहासकारों के लिए 43
जयंत नारलीकर

खून बहता हुआ 53
जे. बी. एस. हाल्डेन

घड़ी जिसने देशांतर का 59
माधव केलकर

सवालीराम 72

फूलों का शृंगार 75
किशोर पवार

प्लेटफॉर्म पर खड़ी 83
रस्किन बांड

अंधा सांप 93
के. आर. शर्मा

श्रुतलेखन पर अंक 36 में लेख पढ़कर मन नहीं माना और एक बार फिर डरते-डरते अपने अनुभव लिखने बैठ गया। डरते हुए इसलिए क्योंकि मेरे अनुभवों को बड़ी मेहनत से भेजने पर आपने कोई प्रतिक्रिया तो छोड़िए, प्राप्ति की सूचना भेजना तक उचित नहीं समझा है।

श्रुतलेखन में बहुत कुछ नया होते हुए भी धरातल से जुड़े प्रायोगिक अनुभव कम ही नज़र आए। श्रुतलेखन के संबंध में लेखक के निष्कर्षों से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता है। एक शाला में मेरे द्वारा किए जा रहे प्रयोग अवलोकनार्थ भेज रहा हूं।

पहले यह स्पष्ट कर दूं कि प्राथमिक शाला तो छोड़िए, माध्यमिक और उच्चतर स्कूल में बच्चों की भाषा का स्तर अत्यन्त निम्न है, ना सिर्फ बच्चों का बल्कि शिक्षकों का भी। यहां पर ऐसे सैंकड़ों बच्चों से मिलवाया जा सकता है जो पांचवीं, आठवीं उत्तीर्ण करके भी अच्छे से लिखना और पढ़ना भी नहीं जानते।

भाषा के सुधार के लिए मैंने समय-समय पर विविध प्रयोग स्वविवेक से किए हैं जिनमें अपेक्षित सफलता भी मिली है।

1. **शब्द-युद्ध** – दो समूह बनाकर उनसे बारी-बारी से श्यामपट पर मेरे द्वारा बोले गए शब्दों को लिखने को कहा। एक सही शब्द लिखने पर एक अंक प्रदान किया गया। अधिक अंक प्राप्त करने वाले समूह को विजेता घोषित किया गया।

बाद में इसमें परिवर्तन करके शब्द को बुलवाने का कार्य पारस्परिक प्रतिद्वंद्वी समूह को सौंप दिया गया।

2. **मात्रा वाले शब्द लिखना** – परंपरागत बारहखड़ी के स्थान पर मैंने सभी मात्राओं के दस-दस शब्द लिखकर लाने को कहा। बच्चे बड़ी तत्परता से अपनी किताब में से विभिन्न मात्राओं के शब्द ढूंढते-ढूंढते बहुत कुछ सीख गए। कभी-कभी सिर्फ एक मात्रा जैसे 'इ' के शब्दों को ही निकलवाया तो कभी 'उ' के शब्द निकलवाए।

3. **श्रुतलेखन सुधार** – परंपरागत श्रुतलेखन में मैंने कई सुधारात्मक सफल प्रयोग किए:

- श्रुतलेखन जांच में अंक प्रणाली अपनाई अर्थात गलतियों के लिए दण्ड के रूप में उनको उतने अंक दिए गए। प्रत्येक बच्चे ने तब प्रयास किया कि उसके कम-से-कम अंक (गलतियां) हों।
- कई बार श्रुतलेखन कराने से पूर्व संबंधित पाठ्यांश को पढ़ने को कहा और फिर उसका श्रुतलेखन बोला।
- श्रुतलेखन के बाद गलतियों को स्वयं ढूंढकर सुधारने का कार्य सौंपा।
- श्रुतलेखन जांच एक-दूसरे से करवाई।

4. **पढ़ना-लड़ना** – परंपरागत पाठ वाचन को और रुचिकर बनाते हुए इसमें स्वस्थ प्रतियोगिता प्रारंभ की जिसके अंतर्गत बच्चों के समूह बनाकर पाठ वाचन करवाया।

एक समूह जहां पर गलती करता है उसके पेनल्टी अंक हो जाते हैं और उसी स्थान से दूसरा समूह पढ़ता है। विभिन्न समूह बारी-बारी से एक-एक शब्द पढ़ते रहते हैं। वे पेनल्टी बचाने की कोशिश तो करते ही हैं, इस बात पर भी बड़ी मुस्तैदी से ध्यान रखते हैं कि दूसरा समूह कहां गलती कर रहा है। सबसे कम पेनल्टी अंक वाला विजेता समूह हो जाता है। यह प्रयोग बेहद लोकप्रिय व सफल रहा और इसे कभी-कभी प्रयोग में लाता रहता हूं।

एक तो मैं पहले से ही बेहद प्रतिकूल परिस्थितियों में, शिक्षाधिकारियों, शिक्षकों, शिक्षा पद्धतियों के कुचक्रों को बमुश्किल भेदने का प्रयास कर रहा हूं और अपने इन अनुभवों का एक मात्र मंच संदर्भ को मानते हुए उससे कुछ मानसिक बल प्राप्त करने की आशा संजोए बैठा था। परंतु संदर्भ द्वारा आलेख प्राप्ति की सूचना तक नहीं भेजना एक बेहद त्रासद घटना है जिसे मैं यथाशीघ्र भुलाना चाहता हूं। इसीलिए मैंने शैक्षिक संदर्भ से पूरी तरह से नाता तोड़ने का फैसला करते हुए इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क नहीं भेजा था।

परन्तु आपने शुल्क समाप्ति के बाद भी संदर्भ भेजकर मेरी समस्त पीड़ा एक बार फिर उभार कर रख दी है।

अजित जैन 'जलज'
ककरवाहा,
टीकमगढ़, म. प्र.

पिछले सप्ताह पहली बार मैंने अपने एक शिक्षक साथी से संदर्भ लेकर पढ़ी। संदर्भ पढ़कर ऐसा लगा कि मेरा छः साल का अध्यापन का अनुभव होने के बावजूद मेरा शिक्षकीय ज्ञान अभी अधूरा है।

बचपन में जिस माहौल में मेरी पढ़ाई हुई वहां मेरी छोटी-छोटी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाला कोई नहीं था। धीरे-धीरे जिज्ञासाएं कुंठित होती गईं। लेकिन इस पत्रिका को देखकर अब फिर से जिज्ञासाएं मचल उठी हैं।

मैं बचपन में सोचता था कि पानी की बूंदें और बुलबुले गोल क्यों होते हैं, पत्तियां अलग-अलग आकार की क्यों होती हैं, वगैरह। संदर्भ को देखकर लगता है कि मुझे गुरु मिल गया है। सवालीराम के सवाल मुझे बेहद भाए। मुझे विश्वास हो चला है कि सिर्फ मेरी ही नहीं बल्कि मेरे छात्रों की भी जिज्ञासाओं का समाधान होगा।

शिवपाल सिंह मलिक
महर्षि दयानंद सरस्वती उ. मा. वि.
भिरानी, राजस्थान

मैं बी. कॉम. का छात्र हूं। मुझे राजा शब्बीर हुसैन ने संदर्भ दिखाई व सदस्यता लेने का सुझाव दिया। मेरी विज्ञान में बहुत रुचि है। मुझे संदर्भ देखकर बहुत खुशी हुई क्योंकि ऐसी विज्ञान पत्रिका बहुत ही कम देखने को मिलती है। शायद ऐसी पत्रिकाओं का अभाव है। मैंने 35वें अंक के रूप में संदर्भ को पहली बार

फिलिस फॉग, पासपार्टआउट ..... आगे क्या हुआ?

आज मुझे संदर्भ पढ़ते हुए दो वर्ष हो गए हैं। मैंने सर्वप्रथम इसे एक सरकारी विद्यालय में देखा था तब यह राजकीय विद्यालयों को निःशुल्क भेजी जाती थी। लेकिन मुझे दुख एवं क्षोभ हुआ जब विद्यालय में इस श्रेष्ठ किताब को उपेक्षित हालत में देखा। वहां इसका कोई कद्र -दान नहीं था। आपने ठीक ही किया जो पत्रिका निःशुल्क भेजना बंद कर दिया।

संदर्भ का 36वां अंक इस बार कुछ विलंब से मिला लेकिन यह अंक पिछले कई अंकों के धारावाहिक लेखों का अंतिम पड़ाव लिए हुए होने के कारण काफी महत्वपूर्ण है। 'बृहस्पति के उपग्रह, देशांतर रेखाएं और प्रकाश की गति' लेख में देशांतर रेखाओं और प्रकाश की गति के साथ-साथ एक और बात सामने आई कि 16वीं और 17वीं सदी में जो भी भौगोलिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक उथल-पुथल हुई उसका प्रारंभ यूरोप में ही क्यों हुआ। अन्य महाद्वीपों में क्या पुनर्जागरण काल शुरू नहीं हुआ था? यदि नहीं शुरू हुआ था तो इसके क्या कारण थे।

'श्रुतलेखन' लेख में लेखक ने जो विचार रखे हैं वे उचित ही हैं। लेकिन श्रुतलेखन में मात्राओं और वर्तनी में गलतियों का एक कारण और भी है – अध्यापक एवं छात्रों की भौगोलिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि की विभिन्नताएं भी उन्हें प्रभावित करती हैं। साथ ही जैसा कि राजस्थान में है प्राथमिक विद्यालयों में बी. एड. प्रशिक्षित अध्यापक कक्षा को पढ़ा रहे हैं जिन्हें माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाने का प्रशिक्षण मिला हुआ है तथा वहां उसी स्तर का बाल मनोविज्ञान उन्होंने पढ़ा है। ऐसे में बहुत संभव है कि शिक्षक बच्चों को समझ पाने में भूल कर जाते हों।

सवालीराम के जवाब पढ़े। आपने प्रश्नकर्ता के नाम तो दिए जबकि उत्तरदाता के नाम देना शायद भूल गए।

'80 दिनों में दुनिया की सैर' की तीसरी किश्त ने जिज्ञासा को और बढ़ा दिया। कहानी के सभी पात्रों की भूमिका अनुकरणीय और सराहनीय है। विदेशी होते हुए भी उन्होंने थोड़े समय में जिस तरह अनेक चुनौतियों का सामना किया तथा इसी के चलते एक नारी का जीवन बचाने के लिए जो साहस किया, वह जीवन मूल्यों के प्रति उनकी श्रद्धा को प्रकट करता है। लेकिन मेरा हार्दिक निवेदन है कि मेरे जैसे अनेक पाठकों की जिज्ञासाओं का सम्मान करते हुए इस कहानी को अंत तक प्रस्तुत कीजिए वरना यह सफर

अधूरा ही रह जाएगा।

'कहानी चौरी-चौरा की' स्वतंत्रता आंदोलन के नए पहलुओं से परिचित कराती है। वैसे तो भारतीयों का स्वभाव ही रहा है कि वे महापुरुषों में आलौकिक एवं चमत्कारिक सत्ता का आरोपण कर लेते हैं और यही हानिकारक साबित हुआ।

गत रविवार को अवकाश होने के कारण मैं अपनी बहन की ससुराल गया, वहां मेरी भांजी ने एक प्रयोग द्वारा अपने शरीर में विद्युत उत्पन्न कर न केवल मुझे छूकर करंट मारा बल्कि चिन्गारी भी पैदा करके दिखाई। मेरी भांजी जो कि 11वीं कक्षा में विज्ञान विषय लेकर पढ़ रही है, उसने जो प्रयोग किया वह कोई भी कर सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है।

सर्वप्रथम एक बालक को ऊनी या पोलिस्टर वाला कपड़ा पहनाकर, किसी प्लास्टिक की कुर्सी पर नंगे पांव, कुर्सी की पीठ वाली दिशा में मुंह करके बैठा दीजिए। फिर कोई दूसरा बालक कोई बड़ा ऊनी वस्त्र लेकर लगभग 3-4 मिनट तक कुर्सी पर बैठे बालक की कमर पर जल्दी-जल्दी मारे। इसके बाद आप कुर्सी पर बैठे बालक के नाखूनों से अपने नाखूनों को छुएं या उसके नाखूनों पर अपने नाखून रखें, तो न केवल करंट लगेगा बल्कि चट-चट सी आवाज़ भी सुनाई देगी।

अगर इसे अंधेरे में करके देखें तो चिंगारी-सी उछलती भी दिखाई देगी। यद्यपि यह करंट क्षणिक ही होता है। मेरी दृष्टि में इसका कारण ऊनी या पोलिस्टर वस्त्रों में घर्षण से विद्युत आवेश उत्पन्न हो जाता होगा जिससे इस प्रकार का करंट लगता है।

21वीं सदी को कम्प्यूटर की सदी बताया जा रहा है। कृपया आप इससे संबंधित जानकारी भी दीजिए।

रमेश जांगिड़
भिरानी, हनुमान नगर, राजस्थान

देखा है। 'उबलते पानी के चश्मे' के बारे में मुझे बहुत ही हैरत हुई कि ऐसे चश्मे भी होते हैं और पता चला कि वे बनते कैसे हैं। 'तितलियों में रंग' भी काफी मज़ेदार लगा।

मुझे इस बारे में उम्मीद न थी कि रंजकों के बगैर कुछ चीज़ें रंगीन हो सकती हैं। मुखपृष्ठ तथा पिछला आवरण बहुत ही आकर्षक व काबिले-तारीफ है। संदर्भ के बारे में मेरे कुछ सुझाव हैं कि आप इसमें कुछ विज्ञान के मॉडल बनाने का स्तंभ शुरू करें।

अगर इस पत्रिका का अंग्रेज़ी संस्करण निकलने लगे तो वह पत्रिका पूरे देश व पूरी दुनिया में कई और लोगों के पास पहुंच सकेगी क्योंकि हमारे देश व विदेशों में भी अंग्रेज़ी भाषी ज़्यादा हैं। मुझे इस पत्रिका की सदस्यता लेना है। मगर मेरे पापा मना कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यह सब फिज़ूलखर्च है। कृपया आप बताएं कि मैं संदर्भ की सदस्यता किस तरह लूं।

हुजेका यमानी
भोपाल

सदस्यता के नवीनीकरण के संदर्भ में आपका पत्र प्राप्त हुआ। जहां तक आपने संदर्भ के बारे में मेरे विचार जानने चाहे हैं तो मैं बता दूं कि इससे पूर्व लिखे खत में मैंने कहा था कि पत्रिका का आकार थोड़ा बड़ा करें। 6" x 9" का आकार बहुत बढ़िया रहेगा। आप 'संदर्भ' को बुक स्टालों पर उपलब्ध कराना चाह रहे हैं तो कम-से-कम पत्रिका का साइज़ ऐसा होना चाहिए कि वह लोगों को आसानी से नज़र आए।

इसके अतिरिक्त आप 'संदर्भ' का विज्ञापन ऐसी पत्रिकाओं में प्रकाशित करा सकते हैं जो विज्ञान व शिक्षा से संबंधित हों जैसे 'विज्ञान प्रगति', 'साइंस रिपोर्टर' वगैरह। साथ ही मैंने पत्रिका के अंदर के चित्रों को भी रंगीन देने का सुझाव दिया था, इससे पत्रिका के आकर्षण में इज़ाफा होगा। इस पत्रिका की भाषा भी सामान्य बोलचाल के निकट ही प्रतीत होती है। अंक-33 के संदर्भ में कहना चाहूंगा कि यह अंक भी ठीक समय पर मुझे प्राप्त हुआ। साथ में लेखकीय प्रति भेजने के लिए धन्यवाद। सभी लेख बहुत ही अच्छे थे विशेषकर 'सांपों की गति' से संबंधित व 'बंगाल में इस्लाम का फैलना', बस इस अंक में कहानी की कमी कुछ अखरी।

आसिफ अली खान
रेलवे कॉलोनी, फतेहपुर, उ. प्र.

अंक 36 में प्रकाशित लेख 'कहानी चौरी-चौरा की' पढ़ा। इसे पढ़कर कई पूर्वाग्रह दूर हो गए। आप अपने अंकों में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनियां भी प्रकाशित कीजिए, संदर्भ में उनका अभाव खलता है। इस बार मुखपृष्ठ पर मकड़ी के जाले में फंसी ओस की बूंदों वाला चित्र काफी आकर्षक लगा।

मीतू मोतियानी
शंकर गली, मोतीबाग, सेंधवा म. प्र.

मैं 'संदर्भ' का नियमित पाठक हूं। यह मेरी मनपसंद पत्रिका है। मुझे इसके प्रत्येक अंक का बेसब्री से इंतज़ार रहता है। मैं इस पत्रिका के हर अंक को पढ़ने के बाद अच्छे से संभालकर रखता हूं ताकि बाद में अगर ज़रूरत पड़े तो मुश्किल न हो।

मुझे आज ही 36वां अंक प्राप्त हुआ, लेकिन 35वां अंक अभी तक मुझे नहीं मिला है। कृपया इस अंक को शीघ्र भिजवाने की अनुकंपा करें।

देवनीष कुमार
दल्ली राजहरा, दुर्ग, छत्तीसगढ़

एक वैज्ञानिक का सफर

वसुमती धुरु

वैज्ञानिकों का जीवन संघर्षों से भरा होता है, यह तो हम अक्सर सुनते हैं। लेकिन यहां तो मामला ही कुछ और था। सन् 1933 में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ के डायरेक्टर सर सी. वी. रामन, एक लड़की कमला भागवत को दाखिला देने से सिर्फ इसलिए इंकार कर रहे थे क्योंकि वह एक लड़की थी।

इस लड़की को काफी जद्दो-जहद के बाद दाखिला दिया लेकिन फिर भी एक साल के प्रोबेशन पर। कमला भागवत ने इस एक साल के दौरान काम करके दिखा दिया कि किसी भी क्षेत्र में इस किस्म का भेदभाव उचित नहीं है।

2 जुलाई 1933; वह दो विश्व-युद्धों के बीच का दौर था। जब तक ज़रूरी न हो तब तक लोग आमतौर पर सफर नहीं करते थे। बंबई से मद्रास जाने वाली मद्रास एक्सप्रेस बेंगलोर रेल्वे स्टेशन पर रुकी थी। इस गाड़ी के सेकेंड क्लास के डिब्बे से भागवत पिता-पुत्री उतरे। लगभग पचास साल के नारायणराव भागवत और उनकी बीस साल की बेटी – कमला। छोटे कद की, गोरी, सलीके से पहनी हुई नौ गजी साड़ी, बालों की कसकर गुंथी हुई चोटी। यह सब देखकर कोई भी यही अंदाज़ लगाता कि नारायणराव अपनी बेटी के लिए किसी भरोसेमंद रिश्ते के सिलसिले में

बेंगलोर आए होंगे। इतने लंबे थका देने वाले सफर के बावजूद भी कमला के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी, वो खासी उत्साहित दिख रही थी। लेकिन उसका यह उत्साह और खुशी, शादी के लिए उत्सुक लड़कियों की तरह की नहीं थी। कमला के उत्साह की वजह कुछ फर्क थी। बेंगलोर स्थित दुनिया भर में मशहूर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ में दाखिले के सिलसिले में कमला यहां आई थी। इस इंस्टीट्यूट में स्नातक डिग्री के बाद शोधकार्य का मौका दिया जाता था। कमला चाहती थी कि उसे किसी विख्यात वैज्ञानिक के मार्गदर्शन में शोधकार्य का मौका मिले और उसका एक सपना था कि वह खुद भी एक दिन वैज्ञानिक बने।

एक भारतीय उद्योगपति श्री यश ने 1911 में बेंगलोर में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ नामक संस्थान की शुरुआत की। यह संस्थान हिन्दुस्तान में शोधकार्यों को बढ़ावा देने के लिए शुरू किया गया था। हो सकता है इसके लिए बेंगलोर का चुनाव यहां के समशीतोष्ण और खुशनुमा मौसम की वजह से किया गया हो। पूरे भारत से चुने हुए विद्यार्थियों को फिज़िक्स, केमिस्ट्री, ऑरगेनिक केमिस्ट्री, बायो-केमिस्ट्री, इंजीनियरिंग जैसे विषयों में शोध करने के लिए यहां दाखिला दिया जाता था। यहां की रिसर्च थीसिस को किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय में भेजने पर उस विद्यार्थी को डिग्री मिल सकती थी। पूरे भारत में इस तरह का यही एकमात्र संस्थान था, इसलिए इस इंस्टीट्यूट में दाखिला पाना भी बड़ी प्रतिष्ठा की बात होती थी।

नारायणराव भागवत 1911 में इस संस्थान में दाखिला पाने वाले पहले ही बैच के विद्यार्थियों में से एक थे। उन्होंने उस समय ऑरगेनिक केमिस्ट्री में शोधकार्य किया था। कुछ साल बाद नारायणराव के छोटे भाई माधवराव ने भी इस इंस्टीट्यूट में प्रवेश पाया और ऑरगेनिक केमिस्ट्री में रिसर्च करके, थीसिस लिखकर उसे बंबई यूनिवर्सिटी में एम. एससी. डिग्री के लिए भेजा। माधवराव की इस थीसिस पर उन्हें डिग्री तो दी ही गई, साथ ही उन्हे 'मूस गोल्ड मेडल' से भी नवाज़ा गया। कमला ने भी बंबई यूनिवर्सिटी से बी. एससी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान लेकर पास की थी। इस सारी पृष्ठभूमि की वजह से यदि कमला के मन में बेंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ में शोधकार्य करने की इच्छा हिलोरे लेने लगी हो तो इसमें अचरज जैसी कोई बात नहीं थी।

बेंगलोर रेल्वे स्टेशन पर भागवत पिता-पुत्री के स्वागत के लिए श्री जतकर आए थे। वे भी कभी इस इंस्टीट्यूट के छात्र थे, बाद में वहां के स्टाफ मेम्बर बन गए। वे इंस्टीट्यूट के कैम्पस में ही रहते थे।

कमला और उसके पिता जल्दी-जल्दी तैयार होकर, इंस्टीट्यूट के तत्कालीन डायरेक्टर, दुनिया भर में मशहूर, नोबल पुरस्कार विजेता, सर चंद्रशेखर वेंकट रामन, से मिलने के लिए पहुंचे। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ ने बी. एससी. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों से आवेदन पत्र मंगवाए थे। नारायणराव ने भी कमला से प्रवेश के लिए अर्जी भेजने के लिए कहा था। चूंकि कमला इंस्टीट्यूट द्वारा तय की गई शर्तों को पूरा करती थी इसलिए उसे दाखिला मिलना चाहिए था, लेकिन इंस्टीट्यूट ने उसकी अर्जी को नामंजूर कर दिया....!

अर्जी नामंजूर करने की वजह बताई गई कि "इस इंस्टीट्यूट में आज तक यानी दो दशकों में, कोई भी लड़की दाखिला लेने नहीं आई है; सिर्फ लड़के ही आए हैं। इसलिए लड़कियों को दाखिला देने का रिवाज़ हमारे संस्थान में नहीं है।"

यह जवाब पढ़कर कमला तो काफी निराश-हताश हो गई थी लेकिन उसके पिता इतनी आसानी से हार मानने वालों में से नहीं थे। उन्होंने कहा, "हम बेंगलोर जाकर सर सी. वी. रामन से मिलकर अपना पक्ष उनके सामने रखेंगे। मुझे लगता है उनके जैसा नोबल पुरस्कार पाने वाला वैज्ञानिक, किसी काबिल इंसान के रिसर्च करने के मौके को इस तरह खत्म नहीं करेगा।"

तो कमला और नारायणराव इस संस्थान में दाखिले पर अपना हक जताने के लिए बेंगलोर आए थे। डायरेक्टर के ऑफिस में नारायणराव ने कदम रखे। उनके पीछे-पीछे डरते-डरते कमला भी अंदर घुसी। उस भव्य ऑफिस में एक टेबिल के पीछे प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी सी. वी. रामन बैठे हुए थे। सिर पर साफा, ग्रे रंग का सूट और टाई, चेहरे पर झलकती बुद्धिमत्ता और साथ ही अंदर से झांकता हुआ अहंकार का भाव।

"वॉट केन आइ डू फॉर यू, मिस्टर भागवत?" नारायणराव से हाथ मिलाने के बाद तुरंत सी. वी. रामन ने सवाल किया।

भागवत ने कहा, "सर देयर सीम्स टू बी सम मिसअंडरस्टेंडिंग। यह मेरी बेटी कमला है। इसने बी. एससी. में केमिस्ट्री, फिज़िक्स विषय लेते हुए बंबई यूनिवर्सिटी में फर्स्ट-क्लास-फर्स्ट से परीक्षा पास की है। फिर इसने आपके संस्थान में सभी औपचारिकताएं पूरी करते हुए दाखिले के लिए अर्ज़ी भेजी थी लेकिन उसे प्रवेश नहीं मिलेगा, ऐसा जवाब आया।"

"हमारे यहां गलतफहमी जैसी कोई बात नहीं होती। इस बात से आप भी बखूबी वाकिफ हैं भागवत जी।"

"लेकिन सर....."

"वो लड़की है इसलिए उसे दाखिला देने से मना किया गया है। इंस्टीट्यूट

से उसे भेजे गए खत में इस बात का ज़िक्र भी किया गया है।"

"सिर्फ लड़की होने की वजह से आप किसी काबिल इंसान को आगे की पढ़ाई का मौका देने से इंकार कर रहे हैं? और वह भी इस बीसवीं सदी में? और वो भी आपके जैसा मशहूर वैज्ञानिक?"

"नो आरगूमेंट्स प्लीज़, मिस्टर भागवत। वैज्ञानिक शोधकार्य औरतों का कार्यक्षेत्र है ही नहीं। यहां कोई घरेलू पहेलियां तो बूझनी नहीं हैं।"

इस अन्याय और अपमान को देखकर कमला के तन-मन से गुस्सा झलकने लगा था। उसने सुना था कि सत्ता की ताकत के आगे बुद्धिमानी पानी भरती है। ऐसा ही कुछ यहां भी दिख रहा था। कमला को मजबूरी में चुप रहना पड़ा।

चित्र: विवेक, चकमक पत्रिका से साभार

रामन अपनी रौ में कहते जा रहे थे, "एक तो पहले से ही मुझे लड़कियां पसंद नहीं हैं। लड़कियां यानी एक मुसीबत, एक गैरज़रूरी झंझट। सौभाग्य से भगवान ने मुझे इस मुसीबत से बचा लिया है। मेरे घर दोनों लड़के ही पैदा हुए। फिर इस इंस्टीट्यूट में मैं यह मुसीबत क्यों मोल लूं? मेरे कुशाग्र विद्यार्थियों की पढ़ाई में क्यों विघ्न डालूं?"

अब कमला के सब्र का बांध टूट गया। नारायणराव के घर में लड़के-लड़की इस किस्म का कोई भेदभाव नहीं था। लड़के-लड़कियों दोनों से समानता का व्यवहार होता था। इसलिए सिर्फ औरत होने के कारण दबाव सहना कमला ने कभी सीखा ही नहीं था। विश्वविद्यालय की पढ़ाई में मिली सफलता, और खेलों में हासिल महारत की वजह से कमला का तन-मन आत्मविश्वास से भरा था।

रामन की बातें सुनकर उसने रामन से सवाल किया, "मुझमें ऐसी क्या कमी है जिसकी वजह से आप मुझे दाखिला देने से इंकार कर रहे हैं? यहां दाखिला पा चुके विद्यार्थियों की तरह मैंने भी स्नातक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है। मुझे स्कॉलरशिप भी मिली है। इतना सब कुछ होने के बावजूद मुझे आगे की पढ़ाई करने का मौका न देकर आप मुझ पर, और मुझ जैसी अन्य लड़कियां जो यहां पढ़ाई करना चाहती हैं, उनके साथ भी नाइंसाफी कर रहे हैं। लेकिन हम भी गांधीजी के सिद्धांतों पर यकीन रखने वाले लोग हैं। सत्याग्रह पर भरोसा रखते हैं। हम यहां से बंबई वापस नहीं जाएंगे, यहीं इंस्टीट्यूट में धरना देकर बैठेंगे।"

ऐसा करारा जवाब सुनकर सर रामन थोड़े चौंक गए। उन्हें यह समझ में आ गया था कि यह शख़्सियत कुछ फर्क है। उन्होंने अपनी आवाज़ में थोड़ी नरमी लाते हुए कहा, "ठीक है। यदि तुम्हारी ऐसी ही ज़िद है तो मैं तुम्हें यहां दाखिला देने के लिए तैयार हूं। लेकिन एक शर्त पर......।"

"वो कौन-सी शर्त?" कमला ने पूछा।

'तुम्हे यहां एक साल तक प्रोबेशन पर काम करना होगा। उसके बाद हमारी तुम्हारे बारे में राय, तुम्हें यहां के काम के बारे में मिली थोड़ी विस्तृत जानकारी, तुम्हारा काम, तुम्हारे काम करने का तरीका वगैरह सभी बातों पर सोच-विचार करके हम तुम्हें यहां नियमानुसार दाखिला देंगे। क्या यह शर्त तुम्हें मंजूर है?"

शर्त सुनकर कमला आग बबूला हो गई थी लेकिन अपने गुस्से पर काबू पाकर उसने लाचारी से कहा, "मंजूर है।" सच भी तो है, मरता क्या न करता। कमला ने इस विचित्र

और अन्यायपूर्ण शर्त को मंजूर तो कर लिया था लेकिन उसने मन-ही-मन यह संकल्प लिया कि अच्छा काम करके, सर रामन की लड़कियों को लेकर जो राय है, उसे बदलने पर मजबूर नहीं किया तो मेरा नाम भी कमला भागवत नहीं।

"ठीक है। तुम किस विषय में काम करना चाहोगी?" रामन ने पूछा।

"जीव रसायन शास्त्र में।" कमला ने विश्वासपूर्वक जवाब दिया।

"बेहतर है। जीव रसायन शास्त्र के प्रोफेसर डॉ. सुब्रह्मण्यम हैं। उनको मैं अभी सूचित करता हूं कि तुम्हें यहां दाखिला दिया गया है। तुम उनसे दोपहर में जाकर मिलो। वो बताएंगे कि आगे क्या करना है।" इस समय तक सर रामन के व्यवहार में काफी फर्क आ गया था। और आवाज़ में भी थोड़ी मधुरता झलक रही थी।

***

युद्ध के दौरान जिस तरह अफवाहें फैलने में समय नहीं लगता, उसी तरह इंस्टीट्यूट में एक लड़की को दाखिला दिया गया है, वो भी एक खास किस्म की शर्त पर..., और-तो-और लड़की ने दाखिला लड़-झगड़कर लिया है...... वगैरह-वगैरह; ऐसी बातों को इंस्टीट्यूट में फैलने में ज़्यादा समय नहीं लगा। नारायणराव और कमला दोपहर में बॉयोकेमिस्ट्री डिपार्टमेंट में पहुंचे, तब वहां इस दाखिले के बारे में चर्चा चल रही थी। अब तक लोगों को भी यह उत्सुकता थी कि देखें तो यह कमला भागवत कौन है, कैसी दिखती है?

हेड ऑफ द डिपार्टमेंट प्रोफेसर सुब्रह्मण्यम और उनके दो साथी, लेक्चरर बैनर्जी और श्रीनिवासैय्या वहां बैठे हुए थे। कमला को इंस्टीट्यूट में दाखिला दिए जाने की सूचना रामन ने अपनी ओर से डिपार्टमेंट को भेज दी थी। लेकिन एक साल के प्रोबेशन की शर्त की वजह से सुब्रह्मण्यम थोड़े पशोपेश में पड़ गए थे कि कमला भागवत क्या काम करेगी, किसके मार्गदर्शन में करेगी? वैसे भी महिला वैज्ञानिक इस संस्था के लिए सिर्फ सुनी-सुनाई हुई बात ही थी। गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती ये सब तो पौराणिक कथानकों के चरित्र मात्र थे लेकिन कमला ने तो इस संस्था में कदम रखते ही रणचंडी का खिताब पा लिया था। अब जब कमला उनके सामने खड़ी थी तो उसे देखकर यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि यही वह सौम्य व्यक्तित्व है जिसे रणचंडी कहा जा रहा था।

आखिर कोई हल न निकलता देखकर श्रीनिवासैय्या ने पहल की और कमला से कहा, "ठीक है तुम मेरे मार्गदर्शन में काम कर सकती हो। लेकिन इस बात का ध्यान रखना कि मैं अनुशासन-प्रिय व्यक्ति हूं। मुझे

आलस और काम में टालमटोल बिल्कुल भी पसंद नहीं है।"

श्रीनिवासैय्या की हामी सुनकर कमला को खुशी का अहसास होने की बजाए थोड़ा डर ही लगा। डर उसे इस बात से नहीं लगा कि उसे मेहनत करनी पड़ेगी। इसकी वजह कुछ और ही थी। श्रीनिवासैय्या का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था – काला रंग, उग्र चेहरा, कर्नाटकी तरीके से कसकर बांधी हुई धोती, सिलवटों वाला कुर्ता, लंबे बाल जिनमें गांठ लगाई थी, सिर पर गांधी टोपी, माथे पर बड़ा-सा चंदन का टीका और लंबी दाढ़ी..... कुल मिलाकर कमला सोच रही थी कि इस खूबसूरत जगह क्या वह दुर्वास मुनि के मार्गदर्शन में ज्ञान पाने की साधना करने के लिए आई है। यह सब सोचते हुए उसे एक कहावत याद आई कि 'बेगर्स केन नॉट बी चूज़र्स'। और उसने आखिरकार श्रीनिवासैय्या के साथ काम करने का मन बना लिया।

फिर श्रीनिवासैय्या ने नारायणराव से कहा, "मिस्टर भागवत आपकी लड़की ने यहां दाखिला पाने के लिए सर रामन की शर्त को स्वीकार कर लिया है। 'नरमी देखी लेकिन चाबुक नहीं देखा' ऐसा न हो इसलिए यहां मेरे साथ काम करने के तरीके के बारे में आपके सामने बातचीत कर लेना ही बेहतर होगा।"

"एक्सक्यूज़ मी सर, मुझे यहां एक साल का प्रोबेशन दिया गया है, इस निर्णय के पक्के तौर पर क्या परिणाम निकल सकते हैं?" कमला ने थोड़ा अधीर होते हुए पूछा।

"देखिए यह एक रिसर्च करने का संस्थान है। यहां दो साल तक रिसर्च करने के बाद आप अपनी तैयार की गई थीसिस को एम. एससी. की डिग्री पाने के लिए किसी यूनिवर्सिटी में भेज सकते हैं। यह तो हुई रिसर्च के बाद की बात। लेकिन फिलहाल तो आपको एक साल के प्रोबेशन पर रखा गया है। यानी आपका इस पहले साल के दौरान किया गया काम एम. एससी. की डिग्री के हिसाब से, रिसर्च के हिस्से के रूप में ले पाना संभव नहीं होगा। यदि आपका काम संस्थान को पसंद आया तो आपके दूसरे साल के रिसर्च पर ही आपको थीसिस लिखने का मौका दिया जा सकता है। कुल मिलाकर जिस काम के लिए बाकी विद्यार्थियों को दो साल या इससे भी थोड़ा ज़्यादा समय मिलता है उसी काम के लिए आपको एक साल का समय मिलने वाला है," श्रीनिवासैय्या ने समझाकर बताया।

"ठीक है।" कमला ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए कहा।

"तो अपना कार्यक्रम सुनो। रोज़ सुबह पांच बजे, मतलब ठीक एकदम पांच बजे तुम्हें लैब में पहुंच जाना

होगा। तब से लेकर रात दस बजे तक मन लगाकर काम करना होगा। मैं जो भी प्रोग्राम या प्रॉबलम्स दूंगा उन्हें पूरा करना होगा। और रोज़ रात में लाइब्रेरी में पढ़ना भी होगा।" श्रीनिवासैय्या ने बताया।

श्रीनिवासैय्या की बातें सुनकर नारायणराव से रहा नहीं गया और उन्होंने पूछ ही लिया, "वो सब तो ठीक है लेकिन इसके खाने-पीने का क्या होगा?"

"उस सब की आप फिक्र मत कीजिए। दोपहर में घर से मेरे लिए खाना आता है। उसी के साथ मैं कमला के लिए भी खाना मंगवा लूंगा और रात का खाना यहां केम्पस की मेस में खाना होगा। इन मामूली कामों में कमला का समय ज़ाया नहीं होना चाहिए।" श्रीनिवासैय्या ने शांत स्वर में नारायणराव को समझाया।

"ठीक है मुझे आपकी सारी शर्तें मंजूर हैं लेकिन मैं भी एक मांग रखना चाहती हूं। उम्मीद है आप उसे मान लेंगे।" कमला ने श्रीनिवासैय्या से कहा।

श्रीनिवासैय्या ने अचरज के साथ पूछा, "कौन-सी मांग?"

"मुझे कामकाज में से रोज़ शाम को 4 से 6 बजे तक छुट्टी चाहिए।"

"वो किसलिए?"

"देखा जाए तो यह मेरी अपनी ज़रूरत है। इसका रिसर्च से कोई वास्ता नहीं है। लेकिन फिर भी बता देती हूं। मुझे इन दो घंटों में लॉन टेनिस खेलना है।" कमला ने बताया।

"टेनिस?" श्रीनिवासैय्या को घोर आश्चर्य हुआ। एक तो मराठी लड़की, दिखने में सीधी-सादी, खुद को पढ़ाकू कहती है और दो घंटे टेनिस खेलने की बात कर रही है।

"जी, टेनिस। एक तो टेनिस मेरा पसंदीदा खेल है और दो घंटे खुली हवा में खेलने से मैं शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहूंगी और आपके द्वारा दिया गया कठिन कार्यक्रम पूरा कर सकूंगी।" कमला ने नम्रता से जवाब दिया।

कुछ सोच-विचार करके थोड़ी नाराज़गी, थोड़ी उत्सुकता के बाद उन्होंने कहा, "ठीक है, दो घंटे की छूट दे रहा हूं।"

"थैंक्यू सर। आपने अपने मार्गदर्शन में मुझे काम करने का जो मौका दिया है इसके लिए आपको कभी भी पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा ऐसा मैं आश्वासन देती हूं।" कमला ने भरे गले से कहा।

इतना सब तय हो जाने के बाद नारायणराव उसी रात बंबई के लिए रवाना हो गए।

कमला के रहने की व्यवस्था कैम्पस के ही एक छोटे मकान में की गई थी। रात के समय साथ में एक बाई होती

थीं। लोकल गार्जियन लेडी रामन बनीं। दोपहर का खाना लैब में श्रीनिवासैय्या के साथ और रात का खाना कैम्पस में मौजूद गुजराती मेस में करना था।

***

सारी व्यवस्थाएं बन गई थीं। लेकिन फिर भी लैब में पहले दिन ही गड़बड़ हो गई। वैसे कमला सुबह चार बजे उठकर तैयार होकर लैब पहुंची। जब वह लैब की सीढ़ियां चढ़ रही थी तब श्रीनिवासैय्या ऊपर की सीढ़ी पर खड़े होकर उसका इंतज़ार कर रहे थे। उनकी हाथ घड़ी में पांच बजने की घंटी बज रही थी।

उन्होंने गंभीरता से कहा, "तुम्हें आने में देर हो गई। पांच बजे से यदि काम शुरू करना है तो पांच बजे से पहले तुम्हें लैब के भीतर पहुंच जाना चाहिए। यदि अच्छा वैज्ञानिक बनना है तो सभी काम नियमित, सलीके से और समय पर करने की आदत डालनी होगी।"

"सॉरी सर। आज मैं लेट हो गई लेकिन अब से ऐसा नहीं होगा।" कमला ने कहा।

फिर दोनों लैब में पहुंचे। कमला लैब में मौजूद उपकरणों को थोड़े आश्चर्य से देख रही थी। श्रीनिवासैय्या ने इस बात को ताड़ लिया और उन्होंने कहा, "विज्ञान में रिसर्च कोई सरल काम नहीं है, जैसे हल्दी लगाओ और गोरे हो जाओ। रिसर्च यानी तपस्या है। कुछ तकनीकें हैं जिन्हे सीखना होगा, पृथक्करण की विभिन्न विधियां हैं उन्हें जानना होगा। डायलिसिस का बॉयो-केमिस्ट्री में खासा महत्व है, उसे भी समझना होगा। यह सब जानने के बाद ही रिसर्च के बारे में सोचा जा सकता है।" श्रीनिवासैय्या ने कमला को समझाया।

कमला ने खुशी से इन बातों को मान लिया। नई चीज़ों को सीखने में उसे काफी मज़ा आता था। उसने श्रीनिवासैय्या द्वारा बताई हुई सभी चीज़ें सीखने के लिए लगने वाले ज़रूरी उपकरणों और किताबों की सूची बनाई। ज़रूरी उपकरणों को स्टोर से लेने के लिए श्रीनिवासैय्या जी के हस्ताक्षर लेने पड़ते थे। इसलिए उसने कागज़ात सर के सामने रखे। उन्होंने कागज़ देखकर कहा, "इन सब उपकरणों की फिलहाल ज़रूरत नहीं है। ये सब अपने पास यहीं रखे हैं।"

"कहां हैं?" कमला ने आश्चर्य से पूछा।

सर ने लैब की एक अलमारी खोलकर उसमें से ग्लास ट्यूबिंग का एक गट्ठर निकाला और उसे कमला के सामने रखा।

कमला के मुंह से बरबस निकल पड़ा, "लेकिन उपकरण कहां हैं? यह तो सिर्फ ग्लास ट्यूब ही हैं।"

"एकदम ठीक फरमाया तुमने। लेकिन इन छोटी-छोटी चीज़ों के लिए

काम रोकना पड़ जाए तो वो वैज्ञानिक ही कैसा? इन ट्यूब्स की मदद से ही उपकरण बनाने होंगे। हमारे लैब अटेंडेंट उम्दा ग्लास ब्लोअर हैं। वो तुम्हें ग्लास ब्लोइंग सिखाएंगे।" श्रीनिवासैय्या ने फरमाया।

इसके बाद कमला की ग्लास ब्लोइंग की क्लासेस शुरू हो गई। ग्लास ब्लोइंग में कांच की ट्यूब को काफी गरम करके उसमें फूंककर, उसे विभिन्न किस्म के आकार दिए जाते हैं। कमला ने सबसे पहले एक कांच की पिपेट बनाई। पिपेट यानी कांच की एक लंबी, पोली नली जिसका बीच का हिस्सा फूला होता है और एक सिरा काफी संकरा होता है। यदि इसका संकरा सिरा किसी तरल पदार्थ में डुबोया जाए और दूसरे सिरे से नली में मौजूद हवा को खींच लिया जाए तो वह तरल इस पिपेट में चढ़ जाता है। कमला ने इस पिपेट को श्रीनिवासैय्या को दिखाया तो उन्होंने इस पिपेट को केलिब्रेट करना (चिह्नित करना) सिखाया। यानी पिपेट पर मिलीलीटर के निशान लगाना ताकि पिपेट में कितना पानी या तरल लिया जा रहा है यह पता चल सके।

दूसरे पाठ के तहत उसे डायलिसिस के लिए ज़रूरी मेंब्रेन (झिल्ली) बनानी थी। बॉयोकेमिस्ट्री में पृथक्करण में बार-बार डायलिसिस करना पड़ता है। डायलिसिस यानी पानी की मदद से पृथक्करण। इसके लिए अलग-अलग किस्म के फिल्टर चाहिए होते हैं। बाज़ार में ऐसे फिल्टर या झिल्लियां मिलते हैं, लेकिन श्रीनिवासैय्या ने कमला को नाइट्रो-सेल्युलोज़ से झिल्ली बनाना सिखाया। कमला ने अलग-अलग आकार की झिल्लियां भी बनाईं। इन झिल्लियों को मैसूर के स्थानीय दशहरे में प्रदर्शनी में रखा गया; जहां लोगों ने इन्हें काफी सराहा। इससे गुरु-शिष्या को काफी संतोष हुआ। लेकिन श्रीनिवासैय्या यहीं नहीं रुके, उन्होंने कमला को इन झिल्लियों के महीन छेदों की सरंध्रता (पोरोसिटी) निकालना भी सिखाया।

***

हालांकि ये सारा काम रसायन विज्ञान में रिसर्च के लिहाज़ से बिल्कुल शुरुआती सीढ़ी थी। फिर भी शुरू से ही नींव मज़बूत होने की वजह से कमला को आगे के काम में काफी आसानी हुई। इस सारे काम में तीन-चार महीने किस तरह निकल गए कमला की समझ में ही नहीं आया। अभी तक कमला की सीखने की इच्छा और ज्ञान पाने की कोशिशों को देखकर श्रीनिवासैय्या भी कमला से खासे प्रभावित हो गए थे। पहले कमला उनके लिए सिर्फ एक विद्यार्थी ही थी लेकिन अब वे कमला को अपनी बेटी जैसा मानने लगे थे। इधर कमला को भी श्रीनिवासैय्या के व्यवहार में पिता जैसा

वात्सल्य महसूस होने लगा था।

इधर एक दिन काफी हैरत अंगेज़ वाक़या हुआ। श्रीनिवासैय्या ने कमला से पूछा, "मिस भागवत, अब आप रिसर्च शुरू करेंगी क्या?"

कमला को कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वह क्या सचमुच यही सुन रही है। वह खुशी से झूम उठी और उसने पूछ ही लिया, "मैं ऐसा कर सकती हूं क्या?"

"ज़रूर। तुम ऐसा कर सकती हो। मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारी शुरुआती तैयारी हो चुकी है। और रिसर्च में मन लगाकर काम करने के लिए ज़रूरी एकाग्रता भी तुम्हारे पास है ही। सबसे पहले तुम प्रोटीन की समस्या पर काम शुरू करो। विभिन्न पशुओं से मिलने वाले दूध और अलग-अलग दलहनों में मौजूद प्रोटीन और नॉन-प्रोटीन्स का पृथक्करण करो।"

दूध के प्रोटीन पर रिसर्च

प्रोटीन को लेकर सबसे पहला शोधकार्य कमला ने दूध पर किया। उसने मां का दूध, गाय का दूध, भैंस का दूध, भेड़ का दूध और गधी का दूध लेकर उनमें से प्रोटीन को अलग किया। इस शोध के दौरान कुछ मज़ेदार निष्कर्ष सामने आए। बच्चों के लिए पाचन के हिसाब से सबसे अच्छा दूध मां का होता है, लेकिन उसके बाद दूसरे नंबर पर गाय का नहीं बल्कि गधी का दूध होता है। यदि कभी दुर्भाग्य से किसी बच्चे को मां का दूध न मिल पाए तो उसे गधी का दूध दिया जा सकता है। गधी के बाद गाय का दूध, फिर भेड़ का और सबसे आखिर में भैंस के दूध का नंबर आता है।

जब प्रोटीन्स में से नॉन-प्रोटीन अलग निकाले गए तो और भी मज़ेदार तथ्य सामने आया। यदि गधी के दूध का नॉन प्रोटीन, भैंस के दूध में मिलाया जाए तो भैंस का दूध भी पाचन में हल्का हो जाता है। इसकी एक वजह तो यह है कि दूध के प्रोटीन में कैसिन नामक एक प्रमुख प्रोटीन होता है। विविध पशुओं के दूध में कैसिन के अणु का आकार भी बड़ा-छोटा होता है। यदि कैसिन का अणु बड़ा होगा तो वह पचने में भी भारी होगा। भैंस के दूध में गधी के दूध का नॉन-प्रोटीन मिलाने से भैंस के दूध में कैसिन का आकार छोटा हो जाता है और दूध पाचन के हिसाब से हल्का हो जाता है।

कमला भागवत ने इस शोध की अगली सीढ़ी पर कदम रखा। उसे एक और बात ध्यान में आई थी कि भैंस के दूध में मलाई (वसा) की मात्रा ज़्यादा होती है। यदि वसा की इस मात्रा को मां के दूध के बराबर लाया जाए और भैंस के दूध में गधी के दूध का नॉन-प्रोटीन मिलाकर जितना ज़रूरी हो उतना कैसिन का आकार कम किया जाए तो बच्चे भैंस का दूध

भी आसानी से पचा सकते हैं। कमला ने इस शोध को 'ह्यूमेनाइज़ेशन ऑफ बफैलो मिल्क' नाम दिया। हमारे देश में गधी और भैंस के दूध की उपलब्धता को देखते हुए इस प्रयोग का एक खास स्थान हो सकता था; लेकिन इस काम को बहुत प्रचार न मिल पाने के कारण यह किसी किस्म की हलचल नहीं पैदा कर सका और कमला के मन की बात मन में ही रह गई।

***

श्रीनिवासैय्या के साथ व्यस्त कार्यक्रम में काम करते हुए प्रोबेशन का एक साल कब खत्म हो गया कमला को पता ही नहीं चला। फिर वो एक दिन सर सी. वी. रामन के ऑफिस पहुंची।

"यस मिस भागवत?" उन्होंने आत्मीयता से पूछा।

"सर, मेरा प्रोबेशन का एक साल पूरा हो गया है। अब मैं यहां रहकर काम करूं या वापस जाऊं? मेरे दाखिले के बारे में आपने क्या सोचा है?" कमला ने पूछा।

"वॉट ए सिली क्वेशचन!" खुलकर हंसते हुए उन्होंने कहा, "निश्चित ही तुम यहां रहकर अपनी रिसर्च पूरी करोगी। तुम्हारी ज्ञान पाने की आकुलता और काम को करने का दृढ़ निश्चय देखकर तो मैं बेहद खुश हूं। मैं इतना खुश हूं कि अब से इस इंस्टीट्यूट के दरवाज़े लड़कियों के लिए भी खुले रहेंगे। इस साल मैं दो लड़कियों को यहां दाखिला देकर अपनी पिछले सालों की गलती को सुधारने वाला हूं।"

कमला को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि ये वही सर रामन हैं जिन्होंने एक साल पहले कहा था कि मुझे लड़कियां बिल्कुल पसंद नहीं हैं। और आज वही रामन बिना किसी संकोच के, बिना किसी लाग-लपेट के कह रहे थे कि मैं उस समय गलत था। एक साल में ही वे बिल्कुल दूसरे छोर पर पहुंच गए थे।

एक भारतीय महिला वैज्ञानिक; कमला सोहनी (1911–1998) के जीवन के विविध प्रसंगों पर आधारित एक जीवनीनुमा किताब 'विज्ञान विशारदा' से साभार।
इस लेख में उनकी जीवनी के कुछ चुनिंदा हिस्से लिए गए हैं।
विज्ञान विशारदा, लेखिकाः वसुमती धुरु, प्रकाशकः ग्रंथाली, मुंबई, 1996.
मूल – मराठी। अनुवाद – माधव केलकर।

अपने हाथ विज्ञान

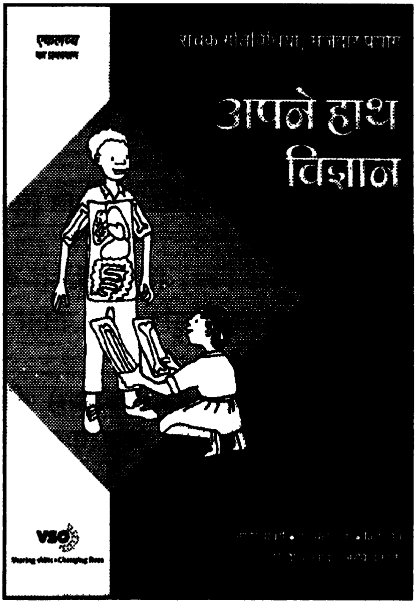

कक्षा में विज्ञान पढ़ाना एक चुनौती भरा काम होता है। प्रयोग और गतिविधियों की मदद से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है लेकिन कई समस्याएं आ खड़ी होती हैं। जैसे – पाठ्य पुस्तकों में पर्याप्त प्रयोगों का अभाव होना, शिक्षकों को गतिविधियों की जानकारी नहीं होती, प्रयोगशाला के उपकरण महंगे होने की वजह से बच्चों को नहीं दिए जा सकते। इन सबका मिलाजुला असर यह होता है कि बच्चों को पढ़ाई नीरस लगने लगती है।

शिक्षकों की इन्हीं सब अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए वॉलंटरी सर्विसेज़ ओवरसीज़ ने दुनिया भर के शिक्षकों द्वारा किए गए प्रयोगों और गतिविधियों का पुस्तक रूप में संकलन किया है।

इस अंक से अगले कुछ अंकों में हम नियमित रूप से इस किताब में सुझाए गए कुछ रोचक प्रयोग व गतिविधियां शृंखला के रूप में देंगे। आशा है कि शिक्षक व विद्यार्थी इन्हें उपयोगी पाएंगे व इनका इस्तेमाल अपनी कक्षा में करेंगे। पहली कड़ी में ध्वनि से संबंधित प्रयोग दिए जा रहे हैं।

ध्वनि

* ध्वनि हवा के कणों के कम्पन से उत्पन्न होती है।
* ध्वनि की गति इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस माध्यम से होकर गुज़र रही है।
* आवाज़ कितनी तेज़ होगी यह ध्वनि-तरंग के आयाम (एम्प्लीट्यूड) पर निर्भर करेगा।
* आवाज़ का ऊंचापन (तारत्व-पिच) निर्भर करता है आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) पर – जितनी अधिक आवृत्ति होगी उतना ही अधिक तारत्व होगा।
* किसी तार अथवा हवा के स्तंभ (एयर कॉलम) की, जितनी अधिक लम्बाई कम्पन कर रही होगी, आवृत्ति उतनी ही कम होगी।

तबले के कम्पन

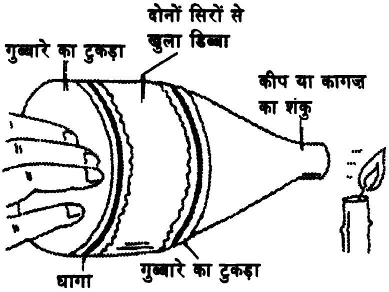

आवश्यक सामान
– टिन का डिब्बा
– फटे-गुब्बारे के टुकड़े
– कीप
– मोमबत्ती

के पेंदे को काट दें जिससे कि वह दोनों तरफ से खुला हो। डिब्बे के सिरों पर, चित्र में दिखाए अनुसार, फटे गुब्बारे के टुकड़ों को तानकर लगाएं और एक तरफ कीप को जोड़ दें।

जब आप इस तबले को उंगलियों से कसकर मारेंगे तो ध्वनि के कम्पन, डिब्बे की हवा में से होकर, गुब्बारे की दूसरी झिल्ली में कम्पन पैदा करेंगे। कीप, ध्वनि के इन कम्पनों को केन्द्रित करेगी। इस प्रकार हुआ हवा का झोंका, मोमबत्ती की लौ को बुझा सकता है।

तारत्व को बदलना

आवश्यक सामान

– फुटरूल (स्केल)

– मेज़

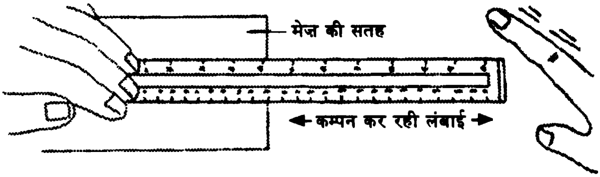

कम्पन करने वाले भाग की लम्बाई जितनी छोटी होगी उतने ही अधिक संख्या में कम्पन होंगे और उनका स्वर भी उतना ही ऊंचा होगा।

मनुष्य के स्वर रज्जु

आवश्यक सामान

– रबर के छल्ले

– दो कीलें

– लकड़ी का आधार

– टिन का डिब्बा

– पेंसिल

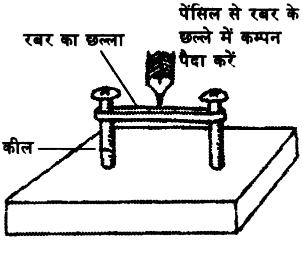

कीलों को मज़बूती से लकड़ी के आधार या टिन के डिब्बे में ठोक दें। रबर के छल्ले स्वर रज्जू (वोकल कॉर्ड्स) को दर्शाएंगे। रबर का छल्ला जितना अधिक तना होगा उतना ही ऊंचा तारत्व होगा

अगर आप पतला रबर का छल्ला इस्तेमाल करेंगे तो उसका क्या असर होगा? गतिविधि के विस्तार के लिए इसकी खोजबीन करें।

ठोस पदार्थों में से ध्वनि का गुज़रना

आवश्यक सामान
- दो टिन के डिब्बे
- एक लम्बी डोरी

दोनों डिब्बों के ढक्कन निकाल दें और उनके पेंदों में एक-एक छेद करें। इन छेदों में एक लम्बी डोरी के सिरों को डालें और अंदर से मोटी-सी गांठ लगाएं। इससे सिरे छेद में से निकलेंगे नहीं। डोरी मोटी हो जिससे छेद अच्छी तरह बंद हो जाएं।

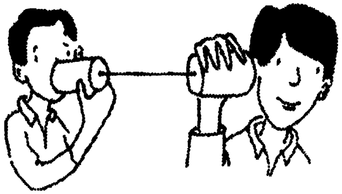

छात्रों के साथ निम्न बातों की जांच-परख करें:
- *डोरी की जगह तार का इस्तेमाल।*
- *डोरी या तार की लम्बाई को बदलना।*
- *डोरी या तार के तनाव को बदलना।*

लकड़ी में से ध्वनि

अगर आप लकड़ी को ठोकेंगे तो उसमें से होकर ध्वनि गुज़रेगी और आप उसे सुन पाएंगे। यह प्रयोग अधिक प्रभावशाली होगा अगर एक लम्बी लकड़ी की पट्टी ली जाए। पट्टी के एक सिरे पर कोई ठोके और दूसरे सिरे पर आप कान लगाकर सुनें।

ध्वनि की रफ्तार

ध्वनि की रफ्तार लगभग 340 मीटर प्रति सेकेंड है। प्रकाश की गति 30 लाख मीटर प्रति सेकेंड है। इसके कारण बल्ब का बटन दबाते ही आपको प्रकाश नज़र आ जाता है। तूफान में, बिजली कड़कने और बादलों की गर्जन के बीच के अंतराल का हिसाब लगाकर आप तूफान की दूरी मालूम कर सकते हैं।

वाद्ययंत्र

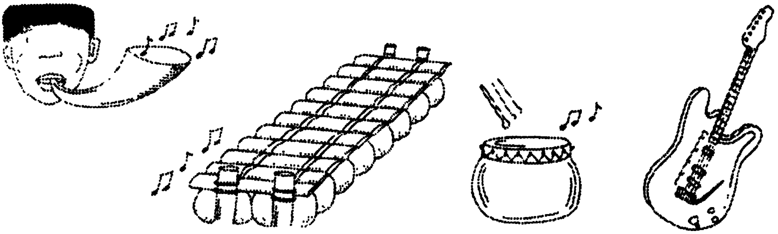

हर तरह का संगीत कम्पनों से ही बना होता है। सभी वाद्ययंत्र कम्पनों के कारण ही काम करते हैं।

छात्रों से पूछें कि किन स्थानीय वाद्ययंत्रों का स्कूल में उपयोग किया जा सकता है। इन वाद्ययंत्रों में किस प्रकार कम्पन पैदा होते हैं?

बांस का बाजा

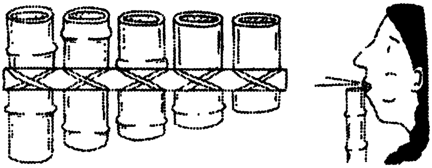

आवश्यक सामान

– बांस के टुकड़े

– डोरी या सेलो-टेप

पहले बांस के टुकड़ों को खोखला करें और फिर उन्हें चित्र में दिखाए तरीके अनुसार बांधें। बांस के टुकड़ों की लम्बाई उनसे पैदा होने वाली आवाज़ के तारत्व को निर्धारित करेगी।

बांसुरी

बांस की खोखली नली के एक सिरे पर एक ऐसा छेद बनाएं जो ऊपर से चौड़ा हो और नीचे से संकरा, यानी पच्चर जैसा हो। यह फूंकने का स्थान होगा। विभिन्न सुरों के लिए आधा-आधा सेंटीमीटर की दूरी पर छेद बनाएं।

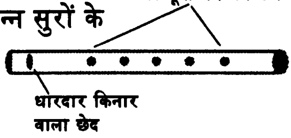

लटकती हुई चीज़ें

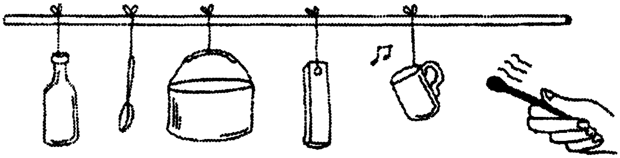

हरेक लटकती हुई चीज़ को एक ही वस्तु से मारें।

छात्र चीज़ों का इस प्रकार चयन करें जिससे कि उन्हें मारने पर, नीचे से ऊंचे क्रम में स्वर निकलें।

बोतलों से जल-तरंग

आवश्यक सामान

– कांच की बोतलें

हरेक बोतल में अलग-अलग मात्रा में पानी डालें। अगर सभी बोतलें एक ही आकार और मोटाई की हों तो बोतल में पानी के ऊपर की हवा की मात्रा (आयतन) और तारत्व के बीच का संबंध आसानी से समझ में आएगा।

अपने हाथ विज्ञान

मूल्य: 60 रुपए

कुल पृष्ठ: 128, आकार: 19.5 से.मी. x27.5 से.मी.

मंगवाने का पता:

एकलव्य
ई–7/453 एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी,
भोपाल म. प्र. 462016
फोन: 0755 – 464824
ई. मेल: eklavyamp@vsnl.com

गुरुत्व की बारीक बातें

नरेश दधीच

पूर्णता के लिहाज़ से शुरू से ही शुरू करते हैं। अर्थात शुरुआत क्लासिकी भौतिकी शास्त्र के न्यूटनीय खाके से करते हैं। हमारे सामने गति के तीन नियम हैं। इनमें से पहला नियम एक साम्य का कथन है कि एकरूप गति (यानी सरल रेखा में एकरूप चाल से गति) और गतिहीनता समान हैं। इसका मतलब यह है कि आप कोई भी भौतिक प्रयोग करें, इन दो अवस्थाओं के बीच भेद करना असंभव है। यदि स्थिति इससे भिन्न है तो यह किसी बाहरी क्षेत्र अथवा बल की उपस्थिति की द्योतक होगी। किसी

बल-मुक्त क्षेत्र में कोई भी कण उपरोक्त में से किसी एक अवस्था में होगा। अवस्था कौन-सी होगी यह प्रारंभिक स्थितियों पर निर्भर करता है। यहां यह मानकर चला जाता है कि वह कण बाहर से प्रदत्त यानी दी गई एक इकाई है, और इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि वह कण अस्तित्व में कैसे आया और उसकी रचना करने में कितनी ऊर्जा खर्च की गई है।

इस संदर्भ में एक मान्यता है जो लगभग आस्था के स्तर पर है कि भौतिक रूप से अनगण्य कोई भी बात ऊर्जा खर्च किए बगैर हो नहीं सकती और यदि किसी चीज़ का भौतिक अस्तित्व है तो उसमें ऊर्जा अवश्य होगी। इसका अर्थ है कि न्यूटनीय भौतिकी में उपस्थित प्रत्येक कण में ऊर्जा होगी ही, चाहे वह कण विराम की स्थिति में ही क्यों न हो। इसे विराम ऊर्जा (स्थितिज ऊर्जा) कह सकते हैं। अर्थ को इतना विस्तार देने के बाद हम कह सकते हैं कि मुक्त आकाश में किसी कण की ऊर्जा उसकी गतिज ऊर्जा और विराम ऊर्जा के योग के बराबर होती है। जब कण विराम अवस्था में होता है तब उसकी सारी ऊर्जा विराम ऊर्जा यानी स्थितिज ऊर्जा के रूप में होती है।

तो उस कण के बारे में क्या कहेंगे जो कभी विराम अवस्था में होता ही नहीं, सदैव गति में रहता है। अर्थात उसकी सारी ऊर्जा गतिज ऊर्जा है, और उसकी विराम ऊर्जा शून्य है। इस कण का अस्तित्व ही इसकी गति में है।

ऐसा कण बाकी समस्त वस्तुओं के सापेक्ष गति करता रहेगा। इसे किसके सापेक्ष, और कितनी चाल से गति करना चाहिए? चूंकि यह कण सबके सापेक्ष गति कर रहा है, इसलिए सबके सापेक्ष इसे एक ही चाल से गति करना चाहिए। यदि प्रकृति में ऐसा कोई कण है तो एक ऐसी सार्वभौमिक (अपरिवर्तनशील) गति का भी अस्तित्व होगा जो सभी प्रेक्षकों के लिए सीमांत यानी चरम गति होगी।

रोशनखयाल

प्रकाश एक ऐसी चीज़ है जो सदैव गतिशील रहती है और किसी के भी सापेक्ष स्थिर नहीं होती। प्रकाश एक विद्युत चुम्बकीय तरंग है जो विद्युतगतिकी संबंधी मैक्सवेल के सिद्धांतों के अनुसार गति करती है। किसी भी तरंग की चाल पूरी तरह उस माध्यम पर निर्भर करती है जिसमें से होकर वह गुज़र रही है। अर्थात इसकी चाल को तभी बदला जा सकता है जब या तो माध्यम को चलायमान किया जाए या बदल दिया जाए। यदि एक ऐसा माध्यम हो जो सर्वत्र व्याप्त हो, जिसे न चलायमान किया जा सके, न बदला जा सके, तो ऐसे माध्यम में प्रकाश की चाल सबके सापेक्ष एक

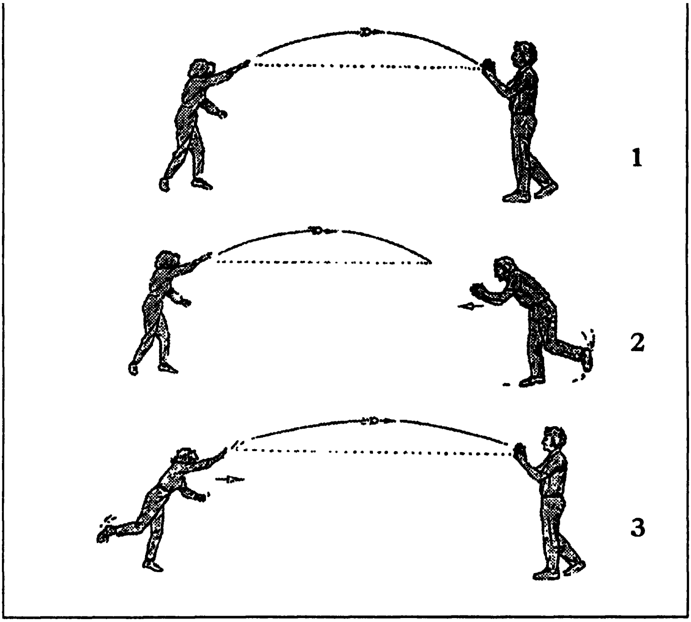

गतियों का योग: दो खिलाड़ी गेंद के साथ खेल रहे हैं। यहां तीन स्थितियां दिखाई गई हैं। **एक:** दोनों खिलाड़ी अपनी-अपनी जगह पर खड़े हैं। एक खिलाड़ी दूसरे की ओर 10 मीटर/सेकेंड की रफ्तार से गेंद फेंक रहा है। **दो:** एक खिलाड़ी दूसरे की ओर 5 मीटर/सेकेंड की रफ्तार से दौड़ लगा रहा है और दूसरा खिलाड़ी पहले की ही तरह 10 मीटर/सेकेंड की रफ्तार से गेंद फेंक रहा है। यानी कैच पकड़ने वाले खिलाड़ी के लिए गेंद की गति 15 मीटर/सेकेंड हुई। यानी दोनों की गतियों का जोड़। **तीन:** गेंद फेंकने वाले खिलाड़ी ने 5मीटर/सेकेंड की रफ्तार से दौड़ते हुए गेंद 10 मीटर/सेकेंड की गति से फेंकी। इस बार भी कैच पकड़ने वाले खिलाड़ी के लिए गेंद की रफ्तार 15 मीटर/सेकेंड ही थी।

सार्वभौमिक स्थिरांक होगी। निर्वात ऐसा ही माध्यम है जिसमें प्रकाश गमन करता है। अतः इस माध्यम में प्रकाश की चाल अपरिवर्तनीय स्थिरांक होगी। प्रकाश का एक क्वांटम ही वह कण है जिसकी विराम ऊर्जा यानी स्थितिज ऊर्जा शून्य होती है और जो किसी भी प्रेक्षक यानी अवलोकनकर्ता के सापेक्ष विराम अवस्था में नहीं रह सकता।

यानी प्रकृति में एक ऐसी भौतिक चीज़ है जो अपरिवर्तनीय स्थिर चाल से गति करती है। यह चाल समस्त भौतिक कणों के लिए सीमांत (अधिक-तम) चाल है। इस तथ्य का समावेश

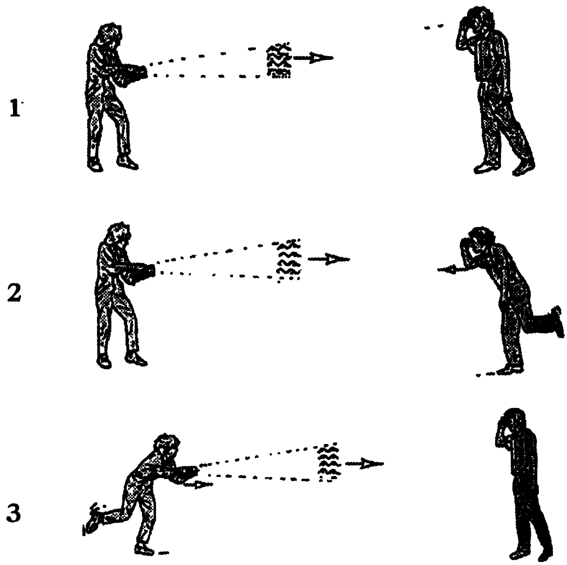

गतियों का योग? गेंद वाले प्रयोग की ही तरह का एक प्रयोग प्रकाश के साथ:

एक: दो व्यक्तियों में से एक के हाथ में टॉर्च है। पहली स्थिति में जब दोनों अपनी-अपनी जगह खड़े हैं। क्षण भर के लिए टॉर्च जलाने पर टॉर्च की रोशनी 30,00,00,000 मीटर/सेकेंड की रफ्तार से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचती है। **दो:** जब पहला व्यक्ति टॉर्च जलाता है उस वक्त दूसरा 5 मीटर प्रति सेकेंड की रफ्तार से उसकी ओर दौड़ रहा है। **तीन:** टॉर्च थामे हुए व्यक्ति 5 मीटर प्रति सेकेंड की गति से दौड़ रहा है और दौड़ते हुए वो टॉर्च जलाता है।

दूसरे और तीसरे, इन दोनों उदाहरणों में प्रकाश की किरण देखने वाले को प्रकाश 30,00,00,005 मीटर/सेकेंड की रफ्तार से आता हुआ नहीं दिखता जैसा कि पहले उदाहरण में हमने देखा था, बल्कि उसकी रफ्तार 30,00,00,00 मीटर प्रति सेकेंड ही रहती है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि दरअसल दो जड़त्वीय फ्रेम के वेग के जोड़ का नियम $v = (v_1 + v_2)/(1 + v_1v_2/c^2)$ है। अगर दोनों की गति प्रकाश की गति की तुलना में काफी कम है तो समीकरण का नीचे वाला हिस्सा लगभग एक हो जाता है जिसके कारण हमारे आसपास की सामान्य घटनाओं में $v = (v_1 + v_2)$ समीकरण अभी भी उतनी ही कारगरता के साथ काम करता है।

इन उदाहरणों में हमने माध्यम के रूप में हवा की मौजूदगी एवं प्रकाश किरणों के पास पृथ्वी की उपस्थिति की वजह से प्रकाश की गति में होने वाले नगण्य परिवर्तनों को नज़रअंदाज़ किया है।

करने के लिए ज़रूरी हो जाएगा कि न्यूटनीय यांत्रिकी में आमूल संशोधन किए जाएं। इस संदर्भ में सबसे प्रथम शहीद होगा वेगों के योग का नियम। क्योंकि प्रकाश के वेग में आप कोई भी वेग जोड़ें, योग प्रकाश का वेग ही होगा। अर्थात् $w = u + v$ समीकरण वैध नहीं रहेगी। इसे बदलना होगा। परन्तु, यह नए नियम का वह रूप होगा जो कमतर वेग पर वैध रहेगा; आखिर इस नियम ने 300 साल तक हमारा साथ दिया है, और यह साधारण तौर पर पाए जाने वाले वेगों के संदर्भ में आगे भी काम देता रहेगा।

अब किसी भी सूचना के प्रसार की अधिकतम गति की सीमा प्रकाश के वेग से परिभाषित होगी। लिहाज़ा घटनाओं को दो समूहों में बांटा जा सकता है। एक समूह उन घटनाओं का होगा जिनके बीच परस्पर कार्य-कारण का सम्बंध है और जिनके बीच समय का अंतराल प्रकाश के एक घटना से दूसरी घटना तक पहुंचने में लगे समय के बराबर या उससे अधिक है। दूसरा समूह उन घटनाओं का है जो कार्य-कारण के लिहाज़ से परस्पर असंबंधित हैं (जिनके बीच समय का अंतराल प्रकाश को एक घटना से दूसरी तक पहुंचने में लगने वाले समय से कम है)। प्रकाश से तेज़ कोई सूचना नहीं पहुंच सकती। अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक 'कारण' के पहुंचने की अधिकतम चाल भी प्रकाश की चाल से अधिक नहीं हो सकती।

चूंकि यह एक ऐसे वेग का अस्तित्व है जिसके बारे में समस्त प्रेक्षक सहमत हैं, अतः यह वेग आकाश व समय को परस्पर जोड़ देगा (इसे भौतिकी में स्पेस-टाइम या दिक्काल का नाम दिया गया है)। हम दूरियों को सेकण्ड में नाप सकते हैं (उतनी दूरी को तय करने में प्रकाश को लगने वाला समय) या समय को सेंटीमीटर में नाप सकते हैं (उतने समय में प्रकाश द्वारा तय की गई दूरी)।

यदि हम दो स्थानों के बीच अलग-अलग रास्तों से यात्रा करें तो हमें अलग-अलग दूरी तय करनी होगी, अर्थात दूरी मार्ग-निर्भर होती है। यह बात हम रोज़मर्रा के अपने अनुभव से जानते हैं। चूंकि प्रकाश के सार्वभौमिक वेग के फलस्वरूप दूरी व समय परस्पर तुल्य हैं इसलिए दो घटनाओं के बीच समय का अंतराल भी मार्ग-निर्भर होगा। अर्थात दो घटनाओं के बीच समय का अंतराल इस बात पर निर्भर करेगा कि कोई प्रेक्षक एक घटना से दूसरी घटना तक जाने के लिए कौन-सा मार्ग चुनता है। सिद्धांततः यदि एक अंतरिक्ष यात्रा का समय अंतरिक्ष यात्री की घड़ी में पढ़ा जाए और पृथ्वी पर खड़े उसके साथियों की घड़ी में पढ़ा जाए, तो ये समय अंतराल अलग-अलग होंगे

क्योंकि इन दो प्रेक्षकों ने दो घटनाओं, यात्रा की शुरुआत व अंत, के बीच अलग-अलग मार्ग अपनाए हैं। यह एक अलग बात है कि यह अंतर कितना कम या अधिक है। एक बार हम यह समझ लें कि दूरी की तरह समय भी मार्ग-निर्भर है तो फिर यह सवाल अर्थहीन है कि कौन सी घड़ी सही है। दोनों घड़ी सही हैं और फिर भी अलग-अलग समय बताती हैं; ठीक वैसे जैसे अलग-अलग रास्तों से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने वाली कारें अलग-अलग किलोमीटर दर्शाएंगी।

यानी प्रकाश व समय दोनों के मापन सापेक्ष व प्रेक्षक यानी अव - लोकनकर्ता पर निर्भर हैं। दरअसल जो चीज़ प्रेक्षक से स्वतंत्र और अपरिवर्तनशील है वह इन दोनों के गठबंधन से प्राप्त दिक्काल (स्पेस-टाइम) है। 1908 में अपना प्रख्यात कोलोन व्याख्यान देते हुए मिन्कोव्स्की ने कहा था, "अपने तईं आकाश और अपने तईं समय दोनों ही पृष्ठभूमि में चले जाएंगे और मात्र इन दोनों का एक गठबंधन ही स्वायत्त सत्ता बना पाएगा।" अर्थात् प्रकाश ही आकाश व समय को गुंथकर दिक्काल (स्पेस-टाइम) का रूप देता है। यह एक नवीन संश्लेषण है।

आकाश को मोड़ता प्रकाश

संहति और ऊर्जा समतुल्य हैं। तो ऊर्जा के किसी भी रूप को वह सब कर सकना चाहिए जो संहति करती है। इसका अर्थ है कि जिस भी चीज़ में ऊर्जा है, उसे गुरुत्व क्षेत्र के साथ अंतर्क्रिया करनी चाहिए। किसी कण की किसी भी क्षेत्र के साथ अंतर्क्रिया का पता कैसे चलता है? वेग में परिवर्तन को देखकर। मसलन जब किसी कण को उछाला जाता है तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध चलते हुए उसका वेग लगातार कम होता जाता है। जब प्रकाश में ऊर्जा है तो उसे भी ऐसा ही करना चाहिए। किन्तु प्रकाश की प्रकृति यह है कि उसका वेग तो कम नहीं हो सकता। इसका वेग तो एक सार्वभौमिक स्थिरांक है, वह कभी नहीं बदलता। फिर प्रकाश गुरुत्वाकर्षण को कैसे महसूस करेगा?

इसका मतलब यह निकलता है कि यदि प्रकाश की अंतर्क्रिया गुरुत्वाकर्षण से होनी है, तो हमें बुनियादी रूप से कुछ नया करना होगा। तब प्रासंगिक सवाल यह है कि वह क्या है जिसके प्रति प्रकाश प्रत्युत्तर दे सके।

प्रकाश आकाश में एक तरंग के रूप में गमन करता है। अतः यह मात्र आकाश (स्पेस) में परिवर्तन का प्रत्युत्तर दे सकता है। एकमात्र सूझबूझ से भरी बात यह होगी कि गुरुत्वाकर्षण आकाश में वक्रता उत्पन्न करे और प्रकाश इस वक्र आकाश के समांतर चले। वक्रता के समांतर चलना ही वक्र आकाश पर सबसे सीधा मार्ग होगा।

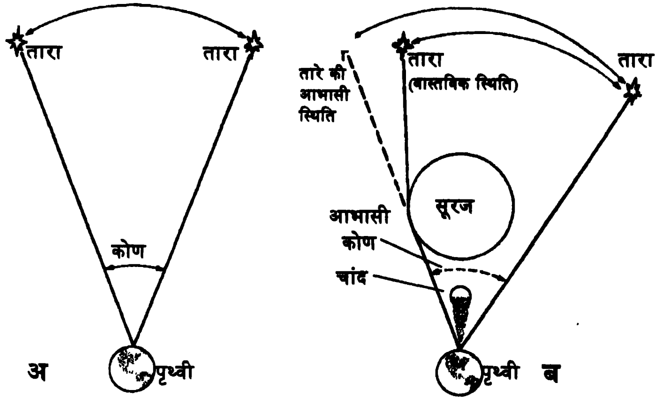

प्रकाश का मुड़ना: सूरज के ठीक पीछे मौजूद तारे का प्रकाश जब सूरज के पास से गुज़रता है तो गुरुत्वाकर्षण की वजह से प्रकाश अपने मार्ग से विचलित हो जाता है और प्रकाश किरण थोड़ी सी मुड़ जाती है। लेकिन किरणों के मुड़ने की जांच सिर्फ पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान ही हो सकती थी। आइंस्टाइन ने बहुत पहले ही इस घटना की भविष्यवाणी की थी परन्तु 1919 और 1922 को हुए पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय की गई जांच के दौरान ही इस तथ्य की सत्यता साबित हो सकी।

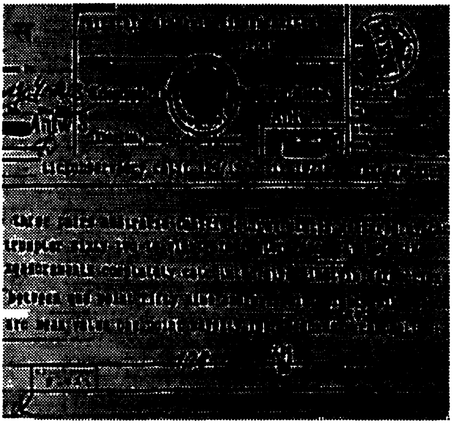

इस जांच के लिए किया यह गया कि सूर्य ग्रहण के दौरान सूर्य के ठीक पीछे रहने वाले तारा मंडल की तस्वीर ऐसे समय खींच ली गई जब उससे आती हुई रोशनी को सूरज के आसपास से न गुज़रना पड़े। देखिए चित्र 'अ'। फिर पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान जब सूरज की पूरी चकती को चांद ने ढक लिया, तब सूरज के पास दिख रहे उसी तारा मंडल की तस्वीर फिर से ली गई। देखिए चित्र 'ब'। दोनों तस्वीरों का मिलान किया जिस से समझ में आया कि ग्रहण के दौरान तारों की स्थिति कुछ हटकर दिख रही है, यानी सूरज के पास से गुज़रते हुए इन तारों का प्रकाश विचलित हुआ था। या दूसरे शब्दों में गुरुत्वाकर्षण के कारण प्रकाश के पथ पर प्रभाव पड़ा था और वह थोड़ा सा मुड़ गया था।

चित्र: 'स' 1922 के पूर्ण सूर्यग्रहण के बाद अल्बर्ट आइंस्टाइन को किया गया टेलीग्राम जिसमें ग्रहण के दौरान किए गए अवलोकनों की पुष्टि की गई।

किसी गोले की सतह पर सबसे सीधा रास्ता एक वृत्त होता है जिसका केन्द्र गोले का केन्द्र हो। किसी भी वक्र सतह पर सरल रेखा के लिए तकनीकी शब्द 'जियोडेसिक' है, और यह मात्र किसी समतल सपाट सतह पर ही 'सरल रेखा' के रूप में दिखाई देती है। इसका गुण यह होता है कि यह किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच चरममान (एक्स्ट्रीमल, सबसे छोटा या सबसे बड़ा) वाला मार्ग दर्शाती है।

गुरुत्वाकर्षण से अंतर्क्रिया के दौरान अपेक्षा यह होती है कि अन्य कणों की तरह प्रकाश भी सरल रेखा में गति करने की बजाए मुड़ जाएगा। यही प्रभाव तब भी हासिल हो सकता है जब प्रकाश की बजाए आकाश (स्पेस) को मोड़ दिया जाए। अतः समस्त प्रासंगिक सिद्धांतों की भौतिक सुसंगति के लिए अनिवार्य है कि गुरुत्वाकर्षण आकाश में वक्रता उत्पन्न करे। यानी विशाल गुरुत्वीय पिण्ड अपने आसपास के आकाश में वक्रता उत्पन्न करेंगे। यदि विशिष्ट सापेक्षता को ध्यान में रखें तो आकाश की वक्रता का अर्थ होगा दिक्काल (स्पेस-टाइम) की वक्रता। यानी प्रकाश गुरुत्वाकर्षण से तभी अंतर्क्रिया कर सकता है जब वह दिक्काल (स्पेस-टाइम) में वक्रता उत्पन्न करे। दूसरे शब्दों में, प्रकाश आकाश को मोड़ता है।

यानी गुरुत्व दोहरी भूमिका निभाता है – वह कणों में त्वरण उत्पन्न करता है और दिक्काल में वक्रता उत्पन्न करता है ताकि प्रकाश उसे महसूस कर सके। निहितार्थ यह है कि मुड़ता आकाश है, प्रकाश नहीं। 1919 में पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान पहली बार एडिंगटन के दल ने जो चीज़ देखी थी वह प्रकाश का मुड़ना नहीं था। वह दरअसल आकाश का मुड़ना था। यह लगभग वैसा ही है जैसे हम रोज़ाना सूरज को पूर्व से पश्चिम की ओर जाता देखते हैं मगर सच्चाई यह है कि पृथ्वी घूम रही है।

अर्थात गुरुत्वाकर्षण को मात्र दिक्काल (स्पेस-टाइम) की वक्रता के रूप में ही परिभाषित किया जा सकता है। इसे संभव बनाने वाला सिद्धांत है सामान्य सापेक्षता।

सपाट से वक्र तक

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी सार्वभौमिक गुण या कथन ज्यामितीय रूप में व्यक्त करने योग्य होना चाहिए। जैसे कि बल की अनुपस्थिति में प्रकाश के वेग और कण की मुक्त गति के लिए मिन्कोव्स्की की मेट्रिक्स है। आगे यह हमारे लिए एक अच्छा मार्गदर्शक सिद्धांत होगा।

बल के मापन के लिए हमें यथार्थ में एक जड़त्वीय फ्रेम (Inertial frame) चाहिए। सवाल यह है कि इसे यथार्थ में प्राप्त कैसे किया जाए। सारे बलों

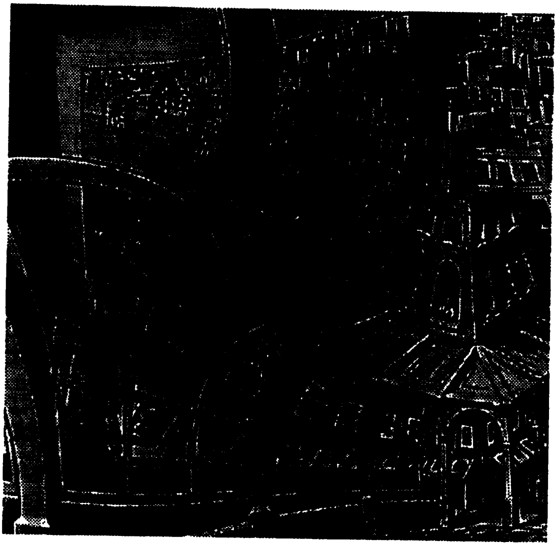

प्रिंट गैलरीः प्रख्यात चित्रकार एम. सी. एशर की एक पेंटिंग जिसमें नॉन-यूक्लिडियन ज्यामिती की विभिन्न संभावनाएं नज़र आती हैं।

को हटाना पड़ेगा। प्रकृति में चार प्रकार के बल होते हैं। इनमें से दो बल तो कम दूरी के बल हैं। अतः ये विस्तृत क्षेत्र में नहीं लगते। अन्य दो बल लंबी दूरी के बल हैं। इनमें से विद्युत चुंबकीय बल तो मात्र विद्युत आवेश युक्त कणों से जुड़ा है। आवेशों व धाराओं का उपयुक्त वितरण स्थापित करके इस बल को बाहर रखा जा सकता है।

किन्तु गुरुत्वाकर्षण का बल सार्व-भौमिक है और इसे रोका नहीं जा सकता। स्वयं न्यूटन ने भी गुरुत्व बल को हटाने सम्बंधी कठिनाई को पहचाना था। उनका सुझाव यह था कि जड़त्वीय फ्रेम को साकार करने के लिए सारे पदार्थ से अनंत दूरी पर जाना होगा।

चूंकि गुरुत्व को ब्रह्माण्ड के स्तर पर हटाना असंभव है, इसलिए एक ब्रह्माण्डीय जड़त्वीय फ्रेम भी असंभव है। अलबत्ता इसे स्थानविशेष से हटाया जा सकता है, जैसा कि गैलीलियो द्वारा पीसा की मीनार पर किए गए प्रसिद्ध प्रयोग से पता चलता है। समस्त कणों में दो गुण समान होते हैं: जड़त्व और गुरुत्वाकर्षण से जुड़ाव (गुरुत्वीय आवेश)। समस्त कणों के लिए एकमात्र

सार्वत्रिक मापक संहति (ऊर्जा) है। अर्थात् जड़त्व और गुरुत्वीय आवेश, दोनों का मापक एक ही होना चाहिए। इसका अर्थ यह होगा कि गुरुत्व के प्रभाव से सारे कण एक समान त्वरण से गिरेंगे और इस पर कण की संहति, आकृति और पदार्थ का कोई असर नहीं होगा। गैलीलियो ने प्रयोग द्वारा इसी बात का सत्यापन किया था।

आइंस्टाइन के अनुसार गुरुत्व को हटाने का तरीका यह होगा कि आप स्वतंत्र रूप से गिरती एक लिफ्ट के साथ अपने आपको गिरने दें। खुशकिस्मती की बात यह है कि गैलीलियो के विपरीत आइंस्टाइन ने यह प्रयोग वास्तव में न करके मात्र ख्यालों में किया, वरना वे हमें इसके परिणाम बताने की स्थिति में न होते। और न ही सामान्य सापेक्षता की कहानी आगे बढ़ती।

स्वतंत्र रूप से गिरती लिफ्ट वाकई जड़त्वीय फ्रेम की द्योतक है किन्तु मात्र स्थानीय स्तर पर। अर्थात् हम कहीं भी एक स्थानीय जड़त्वीय फ्रेम (Local Inertial Frame) निर्मित कर सकते हैं, ब्रह्माण्डीय जड़त्वीय फ्रेम (Global Inertial Frame) नहीं। सापेक्षता का सिद्धांत कहता है कि समस्त स्थानीय जड़त्वीय फ्रेम समतुल्य हैं और इसे समतुल्यता का सिद्धांत कहा जाता है। इसका मतलब यह है कि वास्तविक या ख्याली, कोई भी प्रयोग करके दो स्थानीय जड़त्वीय फ्रेम के बीच भेद करना असंभव है।

आप स्थानीय स्तर पर गुरुत्व उत्पन्न भी कर सकते हैं। करना यह होगा कि मुक्त आकाश में किसी लिफ्ट को ऊपर की दिशा में गुरुत्व के बराबर त्वरण प्रदान कर दिया जाए। यह स्थिति लिफ्ट के अंदर की उस स्थिति से अलग न होगी जब वह विराम की अवस्था में धरातल पर हो। समतुल्यता सिद्धांत का ज़्यादा स्पष्ट वक्तव्य यह होगा: समस्त स्थानीय जड़त्वीय फ्रेम, दिक्काल (स्पेस-टाइम) में उनकी स्थिति चाहे कुछ भी हो, सार्वभौमिक स्थिरांकों – प्रकाश का वेग, गुरुत्व स्थिरांक और प्लान्क स्थिरांक – का मूल्य बराबर नापेंगे।

ब्रह्माण्डीय जड़त्वीय फ्रेम का अस्तित्व न होने के निहितार्थ अत्यंत व्यापक हैं: कि ब्रह्माण्ड के स्तर पर दिक्काल (स्पेस-टाइम) वक्र होना चाहिए। यह बात यूक्लिडीय दूरियों और रीमेनीय दूरियों के अंतर के रूप में सामने आती है। स्थानीय रूप से हम आज भी यूक्लिडीय दूरियों का इस्तेमाल कर सकते हैं। मसलन धरती की सतह पर। हम छोटे पैमाने की दूरियां पता करने के लिए तो यूक्लिडीय ज्यामिति का इस्तेमाल करते हैं – जैसे पुणे से मुंबई की दूरी। दूसरी ओर, मुंबई से लंदन की दूरी के लिए इसका

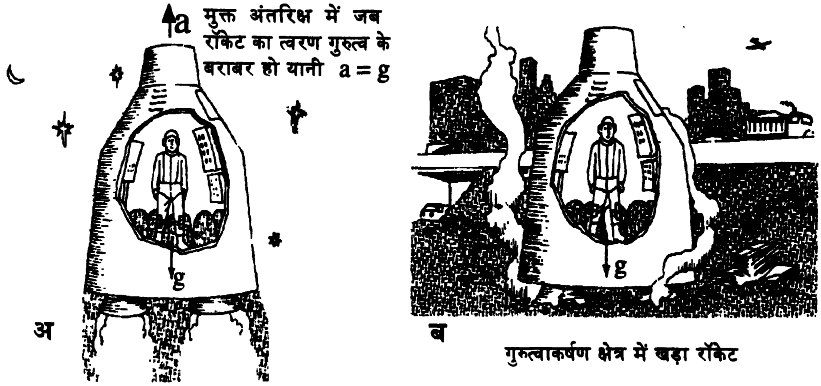

समतुल्यता: भौतिक विज्ञान के नियम दोनों स्थितियों में समान होंगे - (अ) मुक्त अंतरिक्ष में रॉकेट को ऊपर की दिशा में गुरुत्व के बराबर त्वरण प्रदान कर दिया जाए; या (ब) रॉकेट धरातल पर यानी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में स्थिर खड़ा हो।

उपयोग नहीं किया जा सकता।

मुक्त कण की गति वक्र ज्यामिति की 'सरल रेखा' से परिभाषित होती है। गौरतलब है कि एक गोले की सतह पर 'सरल रेखा' वह वृत्त होता है जिसका केन्द्र गोले का केन्द्र हो। अर्थात् गुरुत्व पूरी तरह दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति में अंगीकार हो चुका है और उसी की वक्रता से परिभाषित होता है। इससे हम आइंस्टाइन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर पहुंचते हैं, जिसका नाम है सामान्य सापेक्षता।

(अगले अंक में जारी)

नरेश दधीच: पुणे के इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स (IUCAA) में खगोल विज्ञान में शोधकार्य कर रहे हैं। इस संस्थान को बनाने में उनकी विशेष भूमिका रही है।

अनुवाद – सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

यह लेख 'इंडियन एसोसिएशन फॉर जनरल रिलेटिविटी एंड ग्रेविटेशन' (IAGRG) द्वारा आयोजित एक व्याख्यान माला में, नरेश दधीच द्वारा दिए गए व्याख्यान पर आधारित है। यह आयोजन 30 जनवरी, 2001 को नागपुर में किया गया था। यह व्याख्यान माला एसोसिएशन के दो वरिष्ठतम सदस्यों प्रोफेसर पी. सी. वैद्य एवं ए. के. रायचौधरी के सम्मान में आयोजित की जाती है। इससे पहले के छह व्याख्यान एन. मुकुंदा, जे. वी. नारलीकर, एन. पंचपकेशन, सी. वी. विश्वेश्वरा, आर. कौशिक और एस. एम. चित्रे द्वारा दिए गए थे।

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछली बार हमने आपसे एक सवाल पूछा था – फर्ज़ कीजिए कि आपके पास आठ पेंसिल हैं। पेंसिल की जगह माचिस की तीलियों से भी काम चल जाएगा। इन आठ पेंसिल/तीलियों को इस तरह जमाना है कि दो वर्ग और चार त्रिकोण बन जाएं।

इस सवाल के लिए हमारे पास आए दो सही जवाब यहां पेश कर रहे हैं। रमेश कुमार चंद्रा, जांजगीर, छत्तीसगढ़ ने भेजा हल कुछ इस प्रकार है:

इसमें आठ तीलियों से दो वर्ग ए बी सी डी और पी क्यू आर डी बने हैं। चार त्रिकोण ए पी डी, बी एस पी, क्यू एस सी और सी आर डी बने हैं।

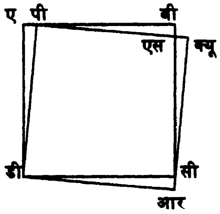

इस सवाल का दूसरा हल इस प्रकार है। इस हल को लीना ओझा, शुजालपुर मंडी, शाजापुर ने भेजा है। इसमें भी दो वर्ग और चार त्रिकोण बन रहे हैं।

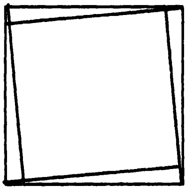

इस बार का सवाल: यहां दी गई काली आकृति को ध्यान से देखिए और इस आकृति को इस तरह से काटना है कि आकृति दो एक जैसी जुड़वां आकृतियों में बंट जाए। ज़रूरी नहीं कि आप कैंची से सिर्फ सीधा कट लगाएं। बस शर्त यही है कि सिर्फ एक ही बार काटना है। अपने जवाब हमारे पास जल्द भेजिए।

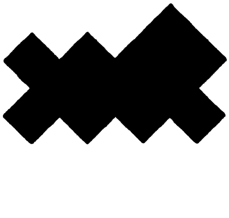

दस-दस सिक्कों की दस ढेरियां

अंक 34 में आपसे एक सवाल पूछा गया था कि दस-दस सिक्कों की दस ढेरियां हैं। पहली ढेरी में सभी सिक्के एक-एक ग्राम के हैं, दूसरी में दो-दो ग्राम के..... इस तरह दसवीं ढेरी में सभी सिक्के दस-दस ग्राम के हैं। इनमें से एक ढेरी के सभी सिक्के नकली हैं और उन सबका वज़न जितना होना चाहिए उससे 0.1 ग्राम कम या ज़्यादा है। आपके पास एक तराजू है जिसकी मदद से आपको कम-से-कम बार तौलते हुए नकली सिक्कों वाली ढेरी का पता लगाना था।

इससे पहले हमने जो जवाब दिया था उसमें तराजू के साथ बाट का इस्तेमाल किया गया था। इस बार जो जवाब दे रहे हैं उसमें यह मानकर चल रहे हैं कि हमारे पास तराजू तो है लेकिन बाट नहीं है। चार बार सिक्कों को तौलकर नकली ढेरी का पता करने का तरीका अलका कालरा ने भेजा है जिसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

अलका जी ने बाट की मदद से एक बार तौलकर नकली सिक्के की ढेरी पता लगाने का सही तरीका भी भेजा था लेकिन तब तक अंक प्रेस में जा चुका था इसलिए उनका नाम नहीं दिया जा सका था।

संदर्भ के 34वें अंक में 'ज़रा सिर तो खुजलाइए' के अंतर्गत पूछे गए प्रश्न का उत्तर भेजा था, जो पूरी तरह अंक 35 में बताए उत्तर से मेल खाता था, परन्तु सही उत्तरदाता के रूप में मेरा नाम प्रकाशित नहीं किया गया, निराशा हुई। बिना बाटों के तौलने के संदर्भ में चार बार में पता लगाने की विधि भेज रही हूं, आशा है स्वीकार्य होगी।

ढेरी संख्या 1, 2, 9 व 10 से एक-एक सिक्का लें, यदि ये असली हैं तो इनका वज़न 22 ग्राम होगा। इसी प्रकार ढेरी संख्या 3, 4, 7 व 8 में से एक-एक सिक्का लें, अगर ये असली हुए तो कुल 22 ग्राम के होने चाहिए। परन्तु बाट नहीं हैं, इसलिए ऊपर लिखे चार-चार सिक्कों के दोनों समूहों के वज़न की तुलना करें, यदि वज़न बराबर हैं तो पांचवीं अथवा छठी ढेरी में से कोई नकली है। अर्थात अन्य आठ ढेरियां असली हैं। अब यदि पांचवीं ढेरी असली है तो पहली ढेरी के पांच सिक्कों का वज़न पांचवीं ढेरी के एक सिक्के के बराबर होगा – ऐसी स्थिति में छठी ढेरी नकली होगी। यदि इस बार तोलने से पलड़े बराबर नहीं रहे तो पांचवी ढेरी नकली हुई। यहां हमने केवल दो बार तोला है।

यदि ढेरी संख्या 1, 2, 9 व 10 के एक-एक सिक्के और ढेरी

संख्या 3, 4, 7 व 8 के एक-एक सिक्के अलग-अलग पलड़ों में रखने पर बराबर न आएं तो केवल एक ही बात तय हुई कि ढेरी संख्या 5 व 6 असली सिक्कों की हैं।

अब तराजू के एक तरफ पहली बार के एक समूह (मान लो 1, 2, 9 व 10 ढेरी वाले) रखकर दूसरी तरफ पांचवीं व छटी ढेरी के दो-दो सिक्के डालो। यदि दोनों पलड़े बराबर हैं तो निश्चित ही ढेरी संख्या 3, 4, 7 या 8 में से कोई ढेरी नकली है, अगर ढेरी संख्या 1, 2, 9 व 10 से लिए सिक्कों का पलड़ा भारी अथवा हल्का है तो इन्हीं ढेरियों में से एक अपेक्षित से भारी अथवा हल्के वज़न की है।

यदि ढेरी संख्या 3, 4, 7 या 8 में से एक ढेरी नकली सिक्कों की है तो तीसरी बार में तराजू के एक तरफ ढेरी संख्या 3 व 8 से एक-एक सिक्का और दूसरी तरफ ढेरी संख्या 5 व 6 से (जो असली हैं) एक-एक सिक्का रखें। पलड़े बराबर हुए तो ढेरी संख्या 4 या 7 नकली है और तीसरे तोल के पलड़े बराबर नहीं हुए तो ढेरी 3 या 8 नकली है। नकली सिक्के का निर्णय ढेरी संख्या 4 या 7 में से करना है तो एक पलड़े में ढेरी संख्या 4 के 5 सिक्के और दूसरे पलड़े में ढेरी संख्या 5 के 4 सिक्के रखें। यदि पलड़े बराबर नहीं हुए तो ढेरी संख्या 4 नकली सिक्कों की हुई और यदि पलड़े बराबर हुए तो ढेरी संख्या 4 असली सिक्कों की हुई, यानी सातवीं ढेरी नकली सिक्कों की है। यही विधि ढेरी संख्या 3 व 8 पर भी लागू होगी। यहां 4 बार तोलकर पता लगाया गया कि नकली ढेरी कौन-सी है।

दो बार की तोल के बाद यदि ढेरी संख्या 3, 4, 7 या 8 में से कोई ढेरी नकली है तो विधि बता दी गई है। यदि ढेरी संख्या 1, 2, 9 या 10 में से कोई ढेरी नकली हुई तो भी ठीक इसी विधि से दो बार और तराजू प्रयोग करने से नकली ढेरी का पता लगाया जा सकता है।

तो चार बार तराजू से तोलकर निश्चित ही नकली यानी अपेक्षित से कम या ज़्यादा वज़न वाली ढेरी का पता लगाया जा सकता है।

अलका कालरा
रमेश नगर, नई दिल्ली

इतिहासकारों के लिए चार सवाल

जयत नारलीकर

इतिहास केवल अतीत की घटनाओं और पात्रों की सूची नहीं है बल्कि इंसानी समाजों और संस्कृतियों के क्रमिक विकास का अध्ययन है। हालांकि यह सच है कि समय-समय पर कुछ विशिष्ट इंसानी पात्रों और घटनाओं ने विकास की इस प्रक्रिया को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मगर, फिर भी विकास की यह प्रक्रिया ज्ञान के संवर्धन के साथ धीमी किन्तु निश्चित गति से आगे बढ़ती रही और इंसानी समाज भी इनके अनुसार अपने आपको ढालता रहा। प्राचीन काल की विज्ञान और तकनीकी भी, चाहे आज वह कितना ही आदिम क्यों न लगे, इसी ज्ञान का एक भाग थी जिसने सभ्यताओं के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई थी। आग की खोज या आग उत्पन्न करने की कला, पत्थरों के औज़ारों से धातु के औज़ारों तक का संक्रमण (ट्रांज़िशन) तथा खेती की शुरुआत, मानव

समाज के ऐतिहासिक विकास की प्रमुख घटनाएं रही हैं।

हम बहुधा विज्ञान के इतिहास की बात कुछ इस प्रकार करते हैं जैसे यह इतिहास की कोई पृथक शाखा हो, जो वैज्ञानिक ज्ञान के विकास की कहानी बताती हो कि किस प्रकार महत्वपूर्ण आविष्कार हुए, किस प्रकार विज्ञान से सम्बंधित विवाद उपजे और समाप्त हुए, किस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों ने इसके विकास में बाधाएं पहुंचाई और किस प्रकार कुछ दुर्घटनाओं ने नए आविष्कारों को जन्म दिया। मेरे विचार से विज्ञान के इतिहास का क्षेत्र इन सबसे कहीं ज़्यादा व्यापक होना चाहिए। इसमें विज्ञान और समाज की अंतर्क्रिया भी शामिल होनी चाहिए क्योंकि विज्ञान समाज को प्रभावित करने वाला एक तत्व रहा है और सामाजिक प्रभाव वैज्ञानिक सोच को नियंत्रित करता रहा है।

हमें अपने इतिहास को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। वैज्ञानिक सोच की स्थिति या विकास से सम्बंधित प्रश्नों के साथ-साथ, अपने प्राचीन ग्रंथों में संदर्भित वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर उन ग्रंथों के काल निर्धारण से सम्बंधित प्रश्नों को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। इस लेख में मैंने इसी प्रकार के कुछ प्रश्नों को उठाने की कोशिश की है।

प्रश्न:1 वेदों की वैज्ञानिक विषय वस्तु क्या है?

हम अक्सर ऐसे वक्तव्य सुनते हैं कि अगर हम वेदों की सही ढंग से व्याख्या करना सीख लें तो आधुनिक विज्ञान के सभी महत्वपूर्ण आविष्कार उनमें पा सकते हैं। इस संदर्भ में तथाकथित 'वैदिक गणित' की काफी चर्चा होती है। साथ ही यह बताया जाता है कि चूंकि रामायण और महाभारत में नियंत्रित प्रक्षेपास्त्रों का ज़िक्र आता है तो उस समय का समाज निश्चित ही तकनीकी रूप से काफी विकसित रहा होगा।

एक आम हिन्दुस्तानी विकसित पश्चिमी देशों से बराबरी करने के लिए अपने देश के लिए एक 'गौरवपूर्ण' अतीत खोजना चाहता है जो वर्तमान के 'विकासशील देश' के दर्जे की भरपाई करे। इतिहासविदों को ऐसे पूर्वाग्रहों को दूर करना होगा और जो कुछ भी जानकारी प्राचीन साहित्य में है उसे

निष्पक्ष-भाव से आकलन कर उजागर करना होगा।

आइए इसी संदर्भ में हम वैदिक गणित को देखें। जहां तक मैंने इनकी व्याख्याओं को देखा है मुझे तो ये तीव्र गणना के तरीकों का संकलन प्रतीत होता है। और इनमें स्थान-विज्ञान (Topology) के ज्यादा परिष्कृत स्तरों या बीज-गणितीय रेखागणित (Algebraic Geometry) तो दूर, उच्च गणित की मूलभूत बातें जैसे अंक सिद्धांत (Number Theory) या उच्च बीज गणित या रेखा गणित के प्रमेय आदि भी शामिल नहीं हैं। मुझे तो बड़ी खुशी होगी अगर वैदिक गणित के विद्वान मुझे गलत साबित कर दें। मगर इसके लिए उन्हें स्पष्ट रूप से निरूपित स्वसंसिद्ध सूक्तियों से शुरू करके परिष्कृत गणितीय परिणाम निकाल कर दिखाना होगा। *

आइए अब हम प्राचीन काल में उच्च तकनीकी (प्रौद्योगिकी) के दावों पर सोच-विचार करते हैं। ऐसे दावों को महाकाव्यों पर आधारित करना बिल्कुल गलत है क्योंकि ये साहित्यिक रचनाएं थीं, तकनीकी विवरण नहीं। ये तो ऐसा ही होगा जैसे अगर हम 'ग्रिम की परी कथाओं' को पढ़कर यह निष्कर्ष निकालें कि 17वीं से 19वीं सदी में यूरोप के लोग जादूगरी और प्रेतकलाओं में माहिर थे। इसकी बजाए हम कुछ प्रासंगिक सवाल उठा सकते हैं जैसे क्या कोई ऐसा विवरण मिलता है जिससे हमें यह पता चले कि उस वक्त लोगों को बुनियादी सुविधाएं जैसे नल का पानी, जल-निकास तंत्र या बिजली की व्यवस्था आदि प्राप्त थीं? नाभिकीय ऊर्जा व प्रक्षेपास्त्र बनाने से कहीं ज्यादा आसान विद्युत का उत्पादन और नगरीय जनता तक उसका वितरण होता है। क्या हमें कोई ऐसा विवरण मिलता है जो यह बताता हो कि विद्युत या चुम्बकीय शक्तियों की जानकारी उस वक्त थी और जिसका उपयोग उस वक्त विद्युत के उत्पादन में किया जा रहा था?

ऐसे भी दावे हैं कि कुछ वैदिक स्रोत वर्णन करते हैं कि किस प्रकार सूर्य हाइड्रोजन और हीलियम के नाभिकीय संलयन (Fusion) के द्वारा अपनी शक्ति प्राप्त करता है। अगर हम इस वर्णन को स्वीकार कर भी लें तब भी इससे हमें यह पता नहीं चलता कि सूर्य की आंतरिक संरचना कैसी

* *'वैदिक गणित' नाम की पुस्तक में जगतगुरू शंकराचार्य ने कई गणितीय सूत्रों का उल्लेख किया है। इनके बारे में उनका कहना था कि ये अथर्ववेद के परिशिष्ट में हैं। परन्तु आज तक अथर्ववेद के किसी भी परिशिष्ट में ये सूत्र नहीं मिले हैं। अतः विद्वानों का मत है कि ये सूत्र वैदिक काल के नहीं बल्कि आधुनिक काल के हैं। — संपादक मंडल*

है, किस प्रकार यह संतुलन में रहता है या किस प्रकार इसकी ऊर्जा इसके केन्द्र से सतह तक आती है आदि। इन सारी बातों को जानने के लिए आज हमें गुरुत्वाकर्षण, विद्युत और चुम्बकत्व, द्रवस्थैतिकी आदि का ज्ञान होना ज़रूरी है। सीधे तौर पर यह कह देना कि दीर्घात्मा ऋषि यह जानते थे कि सूर्य की ऊर्जा नाभिकीय संलयन से प्राप्त होती है, पर्याप्त नहीं है।

संक्षेप में कहें तो हमें संपूर्ण तकनीकी साहित्य की ज़रूरत है, एक सतही काव्यात्मक विवरण की नहीं। ऐसा कहा जाता है कि वेदों में ये सभी जानकारियां गूढ़ भाषा में मौजूद हैं और उनका सही मायने में अर्थ निकालना ज़रूरी है। अगर ऐसी बात है तो पहले उस खास भाषा की स्पष्ट और निर्विवाद कुंजी उपलब्ध कराना होगा। कुछ वैदिक भाषा के विद्वान मिलकर इसकी भाषा की गुत्थियों को सुलझाएं और एक मत हो जाएं, इससे पहले कि वे वैदिक वैज्ञानिक साहित्य की व्याख्या करें; तभी इस प्रयास की प्रामाणिकता सिद्ध होगी। ऐसा शोध निश्चित रूप से लाभप्रद रहेगा। मगर इस शोध में शोधकर्त्ता पश्चिमी विज्ञान की जानकारियों के आधार पर उत्तर ढूंढने की कोशिश न करें। इसके अतिरिक्त अगर इस शोध से कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्य निकल कर आते हैं जिनकी जानकारी अभी तक आधुनिक विज्ञान को नहीं है, तो इन दावों को और भी बल मिलेगा।

प्रश्न:2 क्या खगोलीय उल्लेखों/ संकेतों का इस्तेमाल प्राचीन रचनाओं की तारीखें जानने के लिए किया जा सकता है?

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने लेख 'द ओरायन' में एक अनोखा प्रयोग लिखा था जो संक्षेप में कुछ इस प्रकार था।

तिलक वैसे तो एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में ज़्यादा प्रसिद्ध हैं मगर वो संस्कृत के विद्वान भी थे और उन्हें गणित और खगोलशास्त्र में विशेष रुचि थी। जब वे गीता का भाष्य (गीता रहस्य) लिख रहे थे तो एक छंद ने उन्हें सोच में डाल दिया।

गीता के दसवें भाग में भगवान कृष्ण अपनी तुलना प्रकृति की सभी श्रेष्ठ सजीव और निर्जीव चीज़ों से करते हैं। मगर तिलक का ध्यान जिस एक वाक्य ने अपनी ओर खींचा वो कुछ इस प्रकार था।

"मासानाम मार्गशीर्षोहम् ऋतूनाम कुसुमाकर:"

अर्थात, महीनों में वो 'मार्गशीर्ष' हैं जबकि ऋतुओं में 'बसंत'।

यहां सोचने की बात यह थी कि वर्तमान हिन्दू पंचांग के अनुसार 'मार्गशीर्ष' महीना, जिसकी पहचान

'मृगशिरस' (Orion) तारामंडल से होती है, बसंत ऋतु में नहीं बल्कि शरद ऋतु में आता है। तो ऐसी विसंगति क्यों? क्यों नहीं सबसे अच्छा महीना सबसे अच्छी ऋतु का होता है?

इसका विश्लेषण करते समय तिलक का मानना था कि उक्त वर्णन, उस युग में जिसमें यह बात कही गई थी, सही रहा होगा। क्योंकि विषुव के घूमने (Precession Of Equinoxes) के कारण उस वक्त वर्ष का पहला महीना 'मार्गशीर्ष' था लेकिन अब ऐसा नहीं है। अपने शोध को आगे बढ़ाते हुए तिलक ने वेदों में ऋतुओं और तारामंडलों के उल्लेखों को ढूंढा और उनकी विसंगति को समझने के लिए तर्क दिया कि हमें विषुव के घूमने का अनुमान लगाना पड़ेगा। और इस खगोलीय जानकारी के आधार पर हम उस युग का अनुमान लगा सकते हैं जब वेदों में इनका उल्लेख किया गया होगा। मगर यदि हम तिलक की इन गणनाओं को मानें तो वेदों तथा आर्यों का आरंभिक काल 6000 ई. पू. तक पहुंच जाता है।

ओरायन यानी मृगशिरस तारामंडल: आसमान में काफी आसानी से पहचाना जा सकने वाला तारामंडल। साधारण कैमरे से ली गई तस्वीर में इस तारामंडल के प्रमुख तारे दिखाई दे रहे हैं।

बहुत से विद्वान तिलक की इन गणनाओं से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि ये गणनाएं वेदों को उनके समय से, जो साहित्यिक विकास, इतिहास और नृशास्त्र के आधार पर तय किए गए हैं, काफी पीछे ले जाती हैं। हालांकि खगोलीय गणनाओं के अनुसार तिलक के तरीके में कोई खामी नहीं है। अगर इनमें कोई कमी है तो वो यह कि वे खगोलीय उल्लेख जिन पर यह सिद्धांत आधारित है कितने स्पष्ट हैं; जैसा कि मैंने पहले भी कहा था वेदों की भाषा बहुत आसान या स्पष्ट नहीं है।

उपरोक्त उदाहरण इतिहास, साहित्य और खगोल शास्त्र के मिले-जुले प्रयास की ओर इशारा है। कुछ दूसरे खगोलीय संदर्भ भी हो सकते हैं जैसे, ग्रहण, ग्रहों के परिप्रेक्ष्य में कुछ खास नक्षत्रों का उदय या अस्त होना, धूमकेतुओं का आगमन आदि। इनके अलावा ग्रहों की गति भी समय की अच्छी जानकारी दे सकती है। आज नए-नए कम्प्यूटर प्रोग्रामों की बदौलत इनकी मति काफी शुद्धता से नापी जा सकती है। हेली धूमकेतु जैसे कुछ मशहूर धमूकेतुओं को भी काल निर्धारण में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह अगर साहित्यिक रचनाओं में वर्णित खगोलीय दृश्यों की सत्यता स्थापित की जा सके कि ये उसी वक्त के हैं जिस वक्त इन साहित्यिक रचनाओं का संकलन हुआ था, और इन्हें बाद में नहीं जोड़ा गया है तो खगोलशास्त्र इनके काल निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रश्न:3 क्या भारत में सिद्धांतिक काल में कोई सुपर-नोवा देखा गया था?

यहां मैं क्रैब नेबुला (Crab Nebula) के उदाहरण से शुरू करता हूं। ये खगोलविदों में काफी प्रसिद्ध रहा है क्योंकि कई प्राचीन सभ्यताओं ने इसे एक विस्फोटक तारे के रूप में देखा था। मैंने ये उदाहरण इसलिए चुना क्योंकि ये उसी समय की बात है जब भारतीय खगोल शास्त्र अपने 'सिद्धांतिक काल' में फल-फूल रहा था। (5वीं शताब्दी में आर्यभट से लेकर 12वीं शताब्दी में भास्कर द्वितीय तक के काल को मैं सिद्धांतिक काल मानता हूं।)

नौ सौ वर्ष पहले से ही चीन और जापान के खगोलविद् सभी आकाशीय पिण्डों की बड़ी ही सूक्ष्म जानकारियों का लेखा-जोखा रखा करते थे। ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य मुख्य रूप से ज्योतिष होता था। वहां यह माना जाता था कि अगर उनके देश का राजा सदाचार के रास्ते से हटकर बुरा व्यवहार करेगा तो भगवान उसे सज़ा देंगे और इसकी चेतावनी स्वरूप आकाश में कुछ आश्चर्यजनक घटनाएं घटेंगी। इसलिए वहां के शाही (राजकीय) ज्योतिषी की यह ज़िम्मेदारी होती थी कि वह आकाश पर नज़र रखे और वहां होने वाली किसी भी अजनबी हरकत की जानकारी दे।

आकाश में तारों की सुनिश्चित गतिविधियों तथा ग्रहों की कुछ अनिश्चित लेकिन फिर भी पुर्वा-नुमानित गतिविधियों के अलावा, कुछ असामान्य घटनाएं भी होती रहती हैं जैसे सूर्य और चंद्र ग्रहण, उल्कापात या धूमकेतुओं का आना-जाना आदि। लेकिन 4 जुलाई 1054 ई. (आज के कैलेंडर के आधार पर) को सुंग साम्राज्य के ज्योतिषियों ने जो कुछ

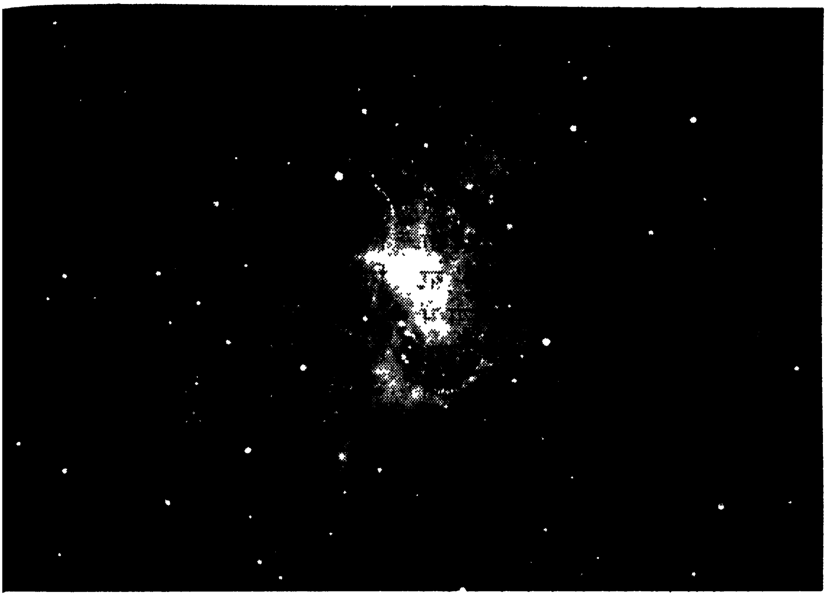

क्रैब नेबुला: जुलाई 1054 में चीन में इस सुपर नोवा विस्फोट को रिकॉर्ड किया गया था। 1731 में इस सुपर नोवा के अवशेषों की खोज दोबारा से की गई। आज भी इस क्रैब नेबुला के अवशेष देखे जा सकते हैं। छह हज़ार प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित इस नेबुला से लगभग सभी तरंग लम्बाइयों की तरंगें निकल रही हैं।

भी देखा वो उनके लिए बहुत ही अचंभित कर देने वाला था। उनके दस्तावेज़ों के अनुसार:

"ची हो के राज्य के पांचवें वर्ष में एक ची छाऊ के दिन थियेन-काउन से कुछ इंच दक्षिण -पूर्व में एक 'मेहमान तारा' उभरा। एक वर्ष से कुछ ज़्यादा दिनों तक दिखाई देने के बाद वह लुप्त हो गया।"

किसी नए तारे का अवतरित होना, वो भी एक ऐसा तारा जो इतना चमकीला था कि दिन में भी दिखाई पड़े और शुक्र ग्रह से पांच गुना ज़्यादा चमकीला दिखे – निश्चित रूप से विचारणीय विषय था। परन्तु यह तारा ज़्यादा दिनों तक इतना चमकीला नहीं रहा। धीरे-धीरे इसकी चमक धूमिल होने लगी और दो सालों में यह नंगी आंखों से दिखाई देना बंद हो गया। लेकिन आसमान में इसका स्थान दूसरे

तारों जैसे ही स्थिर था। चीनी और जापानी दस्तावेज़ों में वर्णित इसकी स्थिति "थियेन काउन से कुछ इंच दक्षिण पूर्व" वृषभ राशि के ज़ीटा टौरी (Zeta Tauri) की ओर संकेत करता है। और क्योंकि यह तारा केवल कुछ ही समय के लिए अवतरित हुआ था इसलिए इसे 'मेहमान तारा' या 'नवागंतुक तारा' कहते हैं। दुनिया में और भी जगहों पर अर्थात भारत, यूरोप, मध्यपूर्व और अमेरिका में भी लोगों ने इस महत्वपूर्ण घटना को देखा होगा लेकिन दुर्भाग्य से और कहीं से भी इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

जैसा कि मैंने पहले कहा था क्रैब सुपर-नोवा का समय भारतीय खगोल-शास्त्र के स्वर्णयुग का समय था। तो यहां यह जानना प्रासंगिक होगा कि क्या किसी भारतीय खगोलविद् ने इस महत्वपूर्ण घटना का ब्यौरा दिया है। हालांकि चार जुलाई दक्षिणी पश्चिमी मॉनसून का समय होता है और आसमान के बादलों से ढके होने की संभावना ज़्यादा रहती है; मगर ऐसा नहीं हो सकता कि उस दिन पूरा का पूरा भारतीय उपमहाद्वीप बादलों से ढका हो। इसके अतिरिक्त अपने अव-तरण के बाद वह पिंड कई दिनों तक एक अत्यधिक चमकीले तारे के रूप में दिखाई देता रहा, जिसे न देख पाना असंभव ही कहा जा सकता है।

ऐसा कहा जाता है कि हम हिन्दुस्तानियों की तो मौखिक परंपरा रही है और हम कभी किसी चीज़ के बारे में लिखित ब्यौरा नहीं रखते। ऐसा हो सकता है लेकिन फिर भी मुझे लगता है कि इस घटना का कोई लिखित विवरण ज़रूर होगा क्योंकि सिद्धांतिक काल में खगोलविदों ने पुस्तकें तो लिखी थीं। ऐसी भी संभावना है कि चीन की तरह इन विवरणों का ज्योतिषीय महत्व हो और इसी संदर्भ में इसकी चर्चा की गई हो। यहां हम क्रैब नेबुला के अतिरिक्त उससे पहले के किसी और सुपर-नोवा के उल्लेख के बारे में भी जानना चाहेंगे क्योंकि ऐसी चमत्कारिक घटनाएं दो-तीन शताब्दियों में एकाध बार होती ही हैं

प्रश्न:4 सिद्धांतिक काल के बाद वैज्ञानिक गतिविधियां क्यों कम हो गईं?

अगर हम कुछ अपवादों को छोड़ दें तो पाते हैं कि बारहवीं शताब्दी के बाद, खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में भारत को जो अगुवाई हासिल थी वह खत्म हो गई। वास्तव में इसके कुछ शताब्दियों बाद जब यूरोप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के एक नए युग का सूत्रपात हुआ तब हमारे देश में इन क्षेत्रों में कुछ भी नहीं हो रहा था। ऐसा क्यों?

इस प्रश्न पर बहुत से लोगों

अलग-अलग मौकों पर विचार किया है। उन्होंने इसके कई तरह के कारण भी बताए हैं जिन्हें मैं संक्षेप में प्रस्तुत करता हूं:

1. यूरोप की जलवायु हमेशा से प्रतिकूल थी। यहां के ठंडे मौसम में जीवन-यापन करना बड़ा ही चुनौती-पूर्ण कार्य था। इस कारण यहां के बहुत से लोग लाभप्रद उपनिवेशों की तलाश में समुद्री यात्राओं पर निकल पड़े। इन समुद्री यात्राओं ने इन्हें विज्ञान का सहारा लेकर जहाज़ निर्माण के नए तरीकों तथा समुद्री यात्रा के लिए ज़रूरी नए उपकरणों (Navigational Aids) की खोज करने पर मजबूर किया। जो लोग इन समुद्री यात्राओं पर नहीं गए उन्होंने भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर अपनी जीवन-शैली को सुधारने का काम शुरू किया जिससे कई नए आविष्कार हुए।

इसके विपरीत भारत की जलवायु यहां के निवासियों के काफी अनुकूल थी और यूरोप की तरह उनके लिए कोई चुनौती प्रस्तुत नहीं करती थी। इसके अतिरिक्त कुछ धार्मिक वर्जनाएं भी थीं जो भारतीयों को समुद्री यात्राएं करने से रोकती थीं। इन वर्जनाओं ने इन्हें उपनिवेशों की तलाश करने से भी निरुत्साहित किया।

2. हमारे धार्मिक और सामाजिक मूल्यों ने हमेशा से ही सादा जीवन और भौतिक सुख को त्यागने पर ज़ोर दिया है। ये मूल्य वैसे तो प्रशंसनीय हैं मगर इससे सुख सुविधाओं और विलासिता की वस्तुओं की तलाश पर रोक लग जाती है। फलस्वरूप व्यवहारिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की चाहत कभी भी भारतीय परिवेश में नहीं पनप पाई।

3. विज्ञान की प्रगति के पीछे 'और जानने की चाहत व जिज्ञासा' होती है, रटंत विद्या नहीं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था मुख्य रूप से शास्त्रों के मौखिक उच्चारण पर आधारित थी और इसी के द्वारा शताब्दियों तक ज्ञान आगे बढ़ता रहा। मगर इसका सबसे बड़ा नुकसान यह था कि नई बातें आसानी से सामने नहीं आ पाती थीं। ऐसी व्यवस्था में नए विचारों को जोड़ने का काम आर्यभट और भास्कराचार्य जैसे मौलिक और प्रबल विचारक ही कर सकते थे। मगर दुर्भाग्य से ऐसे विचारक भी कम ही उभर पाते थे।

4. यूरोप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को शाही परिवारों तथा अभिजात वर्ग का संरक्षण प्राप्त था। 'रॉयल सोसायटी' और 'फ्रेंच अकादमी' ऐसे ही शाही संरक्षण का नमूना हैं, लेकिन वहां खास बात थी कि अभिजात वर्ग वैज्ञानिक अन्वेषणों की सहायता करना संगीत और ललित कला की सहायता करने जितना ही उचित समझता था। इसकी तुलना में भारत में संगीत और

ललित कला को तो शाही और अभिजात वर्ग का संरक्षण मिला, मगर वैज्ञानिक अन्वेषणों को बिल्कुल नहीं। एक मुगल बादशाह, तानसेन को संरक्षण दे सकता था या ताजमहल बनवा सकता था, मगर विज्ञान को संरक्षण देना उसने कभी आवश्यक नहीं समझा।

आगे चलकर विज्ञान की इस अवहेलना की हमें बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी क्योंकि अंग्रेज़ों ने हम पर केवल 'फूट डालो और राज करो' की नीति के कारण ही शासन नहीं किया बल्कि उनकी विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर कहीं ज़्यादा पकड़ ने हम पर शासन करना आसान बना दिया था।

ये कुछ संभावित उत्तर हो सकते हैं मगर क्या ये पूरी बात बयान करते हैं? इसका जवाब हमारे वर्तमान के लिए भी सहायक हो सकता है क्योंकि आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन को अपने कब्ज़े में ले रखा है और ऐसे वक्त में इतिहास इन विषयों की महत्ता समझने में हमारी मदद कर सकता है।

मुझे लगता है कि मैंने अपनी अज्ञानता पर्याप्त रूप से व्यक्त कर दी है कि विज्ञान के इतिहास के किन क्षेत्रों में शोध करने पर महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त हो सकती हैं। 'अज्ञानता' इसलिए कि हो सकता है जिन सवालों के जवाब मैं जानना चाहता हूं वे पहले से ही मालूम हों। फिर भी इस महाद्वीप में वैज्ञानिक सोच के विकास की पूरी कहानी को एक साथ लाना — एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परियोजना हो सकती है; और यहां जो प्रश्न मैंने उठाए हैं वे कुछ महत्वपूर्ण सवालों के नमूना मात्र हैं जिनका जवाब इस क्षेत्र में होने वाले शोध से ही प्राप्त हो पाएगा।

जयंत नारलीकर: पुणे के इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स (IUCAA) में निदेशक हैं। उन्होंने ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास संबंधी परिकल्पना पर शोधकार्य किया है। IUCAA संस्थान को बनाने में उनकी विशेष भूमिका रही है। जयंतजी ने खगोल विज्ञान विषय पर मराठी और हिन्दी में लेखन किया है। उन्होंने अनेक विज्ञान कथाएं भी लिखी हैं। 'धूमकेतु' उनकी कथाओं का संग्रह है। उन्होंने एक विज्ञान उपन्यास 'आगन्तुक' भी लिखा है।

अनुवाद: गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।

यह लेख *'साइंस, फिलॉस्फी एंड कल्चर'* किताब में प्रकाशित लेख Four Questions That History Might Answer से लिया गया है।

खून: बहता हुआ परिवहन तंत्र

जे. बी. एस. हाल्डेन

इस बार चर्चा हो रही है खून की। खून में कोशिकाओं के लिए ऑक्सीजन है, भोजन है, हॉर्मोन्स हैं। इन सब की संतुलित मात्रा खून में होनी चाहिए। साथ ही शरीर के अवशिष्ट पदार्थ भी हैं जिन्हें शरीर से निकाल बाहर करना है। तमाम जटिलताओं के बावजूद खून रगों में लगातार दौड़ता रहता है।

शरीर के विभिन्न हिस्सों के बीच सबसे स्पष्ट व मज़बूत संबंध तंत्रिका तंत्र के माध्यम से बनता है। हम जब चाहें अपनी टांग हिला सकते हैं, या कभी-कभार किसी तपती चीज़ पर पैर पड़ जाए तो अनैच्छिक रूप से भी टांग में हरकत हो जाती है। और यह भी सिद्ध हो चुका है कि पसीना आने और पाचन जैसी अचेतन क्रियाएं भी तंत्रिका नियंत्रण में होती हैं।

रसायनों का आदान-प्रदान

किन्तु शरीर के विभिन्न अंगों के बीच रासायनिक संबंध भी बहुत महत्व रखते हैं। आप टांग में जाने वाली तंत्रिका काट दीजिए, फिर भी टांग ज़िंदा रहेगी। हालांकि यदि उस तंत्रिका की पुनः वृद्धि न हुई तो मांसपेशियां दुर्बल हो जाएंगी। परंतु यदि आप कुछ घण्टों के लिए टांग को खून की सप्लाई रोक दें तो टांग मर जाएगी; और यदि इसे काट कर शरीर से अलग न किया गया तो पूरा शरीर सड़ने लगेगा।

शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक रासायनिक पदार्थों का परिवहन ज़्यादातर खून के माध्यम से होता है। परन्तु कुछ परिवहन एक पारदर्शी तरल

लसिका (लिम्फ) द्वारा भी होता है। लसिका ऊतकों में से विशेष नलिकाओं के ज़रिए रक्त प्रवाह में पहुंचता है।

आपके शरीर में लगभग एक गैलन (लगभग साढ़े चार लीटर) खून होता है। खून के कुल आयतन में से आधा आयतन तो लाल रक्त कोशिकाओं का होता है। ये लाल रक्त कोशिकाएं ऑक्सीजन को इधर-उधर लेकर जाती हैं। खून का शेष भाग प्लाज़्मा कहलाता है जो हल्के पीले रंग का तरल होता है। खून में बहते अन्य पदार्थ प्लाज़्मा में ही घुले या तैरते रहते हैं।

कितना खून, कितना पानी

खून में उपस्थित अन्य पदार्थों में प्रोटीन भी होते हैं। प्रोटीन के ये अणु इतने विशाल होते हैं कि वे अधिकांश रक्त वाहिनियों की झिल्ली के पार नहीं जा सकते। जो पदार्थ इस झिल्ली के पार आ-जा सकते हैं उनके बारे में गौरतलब बात यह है कि खून में उनकी मात्रा बहुत स्थिर बनी रहती है। मसलन विभिन्न व्यक्तियों की प्लाज़्मा में या एक ही व्यक्ति के प्लाज़्मा में अलग-अलग समय पर एक प्रतिशत से ज़्यादा का अंतर नहीं आता।

इसका कारण ऐतिहासिक है। केकड़े, कटलफिश और अन्य कई समुद्री जीवों के रक्त प्लाज़्मा का संघटन लगभग समुद्र के पानी जैसा होता है। उनके दिल को यदि समुद्री पानी में छोड़ दिया जाए तो वह कुछ समय तक धड़कता रहेगा। यदि आप एक खरगोश को मारकर उसका हृदय समुद्री पानी में अथवा मीठे पानी में रखेंगे तो वह नहीं धड़केगा। हां, यदि आप समुद्री पानी में ढाई गुना मीठा पानी मिलाकर उसमें इस हृदय को रखें तो वह धड़कता रहेगा। और यदि आप एक ऐसा घोल बना लें जो लगभग प्लाज़्मा से मिलता-जुलता हो तो और भी बेहतर। हमारी कोशिकाएं कृत्रिम समुद्री पानी की मांग करती हैं क्योंकि हमारे सुदूर पूर्वज समुद्र में रहने के आदी थे। किन्तु हमारी कोशिकाओं को उतना गाढ़ा समुद्री पानी नहीं चाहिए क्योंकि जब लगभग 30 करोड़ वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने समुद्र छोड़ा था उस समय समुद्रों में आज की अपेक्षा कहीं कम नमक था।

प्लाज़्मा में अधिकांश लवण नमक (सोडियम क्लोराइड) और सोडियम कार्बोनेट के रूप में होता है। इनके अलावा थोड़ी मात्रा में पोटेशियम, कैल्शियम व मैग्नीशियम के लवण, फॉस्फेट तथा अन्य घटक होते हैं; जस्ता व लोहा तक होते हैं। ये सभी अनिवार्य हैं। पौटेशियम न हो तो हृदय ऐंठ जाएगा। कैल्शियम के बगैर हृदय संकुचित नहीं होगा। बाइकार्बोनेट लवण रक्त की अम्लीयता का संतुलन बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। यदि बाइकार्बोनेट द्वारा संतुलन न बनाए रखा जाए तो विभिन्न अंगों में उत्पन्न

कार्बन डाईऑक्साइड के कारण अम्लीयता बढ़ती जाएगी। खून में लवणों के अलावा ऑक्सीजन और भोज्य पदार्थ भी होते हैं जिन्हें विभिन्न अंगों तक पहुंचाया जाना है। इसके अलावा अवशिष्ट पदार्थ होते हैं जिन्हें शरीर से बाहर फेंका जाना है, और हॉर्मोन होते हैं जो एक अंग से दूसरे अंग तक जा रहे होते हैं। इन सबकी मात्राएं भी अत्यंत स्थिर रहती हैं।

हमारी कोशिकाएं विशेषीकृत होती हैं। ये अपने-अपने काम में बहुत माहिर होती हैं – यह काम यांत्रिक कार्य हो सकता है, कोई पदार्थ बनाने का रासायनिक कार्य हो सकता है या सोचने का कार्य हो सकता है। बहरहाल, हमारी ये विशेषीकृत कोशिकाएं उन प्रोटोज़ोआ कोशिकाओं से ज़्यादा कार्यक्षम होती हैं जिन्हें हरफनमौला ढंग से सारे कार्य करना होते हैं।

किन्तु हमारी इन विशेषीकृत कोशिकाओं को काम करने के लिए ऑक्सीजन, भोजन और हॉर्मोन्स की पर्याप्त मात्रा चाहिए और एक स्थिर तापमान एवं अपशिष्ट पदार्थों की निकासी भी आवश्यक है। एक कुशल मेकेनिक प्रतिदिन किसी अप्रशिक्षित व्यक्ति से कहीं ज़्यादा उत्पादन करेगा किन्तु वह अप्रशिक्षित व्यक्ति की तरह सारे काम नहीं कर सकता। कुशल मेकेनिक के लिए ये सारे काम कई अन्य कुशल मेकेनिक करेंगे। हमारी कोशिकाएं इस एक मायने में विशेषीकृत हैं।

अंदरूनी वातावरण

महान फ्रांसिसी शरीर क्रिया वैज्ञानिक क्लॉड बर्नार्ड, जिन्होंने खून में शक्कर की उपस्थिति की खोज की थी, उन्होंने निम्नलिखित बात कही थी: "समस्त जीवन क्रियाओं का उद्देश्य एक ही है कि आंतरिक पर्यावरण में जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनी रहें।" हो सकता है कि यह अतिशयोक्ति हो मगर यह बात इतनी गलत भी नहीं है।

इसे यों देखिए। आप दिहाड़ी पर काम करते हैं। आपकी दिहाड़ी मुख्यतः भोजन, कपड़े और मकान किराए पर खर्च होती है। कपड़े और मकान आपको अपने शरीर का तापमान स्थिर बनाए रखने में मदद करते हैं। खून में पोषक पदार्थों की मात्रा स्थिर बनाए रखने के लिए भोजन की ज़रूरत होती है। यदि आप सड़ता दांत न निकलवाएं तो खून में तमाम किस्म के ज़हर पहुंचने लगेंगे। इसलिए यह आपका सौभाग्य है कि आपको चेतावनी देने के लिए दांत का दर्द है। यदि आप न नहाएं तो भी आपको कोई बीमारी हो सकती है। यदि आप फांसी लगा लें तो आपके दिमाग की कोशिकाओं को ऑक्सीजन नहीं मिलेगी। तब आपकी मृत्यु हो जाएगी। क्लॉड बर्नार्ड, मार्क्स के

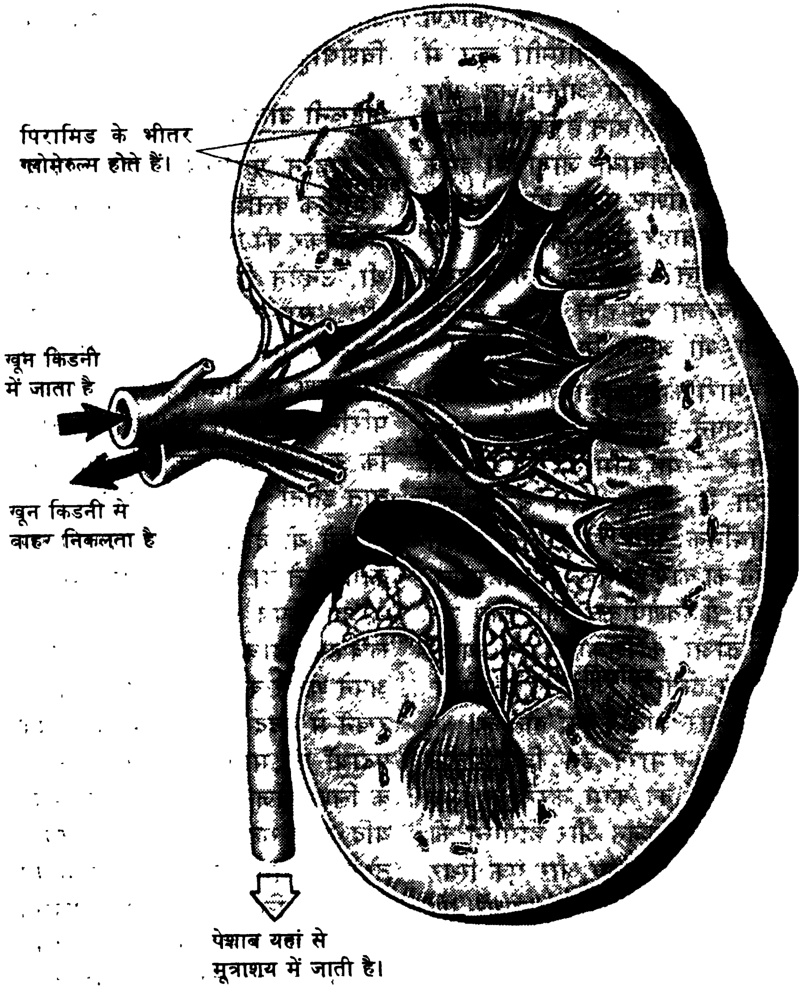

किडनी का काम: मानव शरीर में दो किडनियां होती हैं। इनमें से हरेक किडनी में रीनल आर्टरी (Renal Artery) के द्वारा खून प्रवेश करता है। खून महीन केपीलरीस से होता हुआ असंख्य छन्नों (ग्लोमेरुल्स) से छनता जाता है। छना हुआ खून रीनल वेन (Renal Vein) से होता हुआ किडनी से बाहर निकल जाता है। खून को छानकर अवशिष्ट पदार्थों को मूत्राशय की ओर भेज दिया जाता है जहां से अवशिष्ट पदार्थ बाहर निकल जाते हैं।

समकालीन थे। शरीर क्रिया विज्ञान के संदर्भ में बर्नार्ड का सामान्यीकरण उतना ही महत्व रखता है जैसा राजनीति के अध्ययन में इतिहास की आर्थिक व्याख्या का है। जब हम यह जान गए कि खून के विभिन्न घटकों की ज़रूरत क्यों है और उनका नियमन कैसे किया जाता है, तो मान लीजिए कि हम काफी हद तक अपने शरीर के कामकाज को समझ गए हैं।

पदार्थों का संतुलन बनाए रखना

गुर्दों का एक कार्य खून में लवणों की मात्रा का नियमन करना तथा दूसरा कार्य अवशिष्ट व अवांछित पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का है। प्रत्येक गुर्दे में लगभग दस लाख सूक्ष्म छन्नियां होती हैं जिन्हें ग्लोमेरुल्स कहते हैं। इनमें से होकर खून बहता है। इन छन्नियों में रक्त कोशिकाएं और प्रोटीन तो रुक जाते हैं किन्तु लगभग एक-चौथाई प्लाज़्मा छनकर नीचे एक नली में पहुंच जाता है। इस नली की दीवारें ज़िंदा हैं और यहां प्लाज़्मा को वापस सोख लिया जाता है। वहां से यह प्लाज़्मा फिर से खून में पहुंचा दिया जाता है। दूसरी ओर लगभग सारे अवशिष्ट पदार्थ नली में ही आगे बढ़ जाते हैं और पेशाब के रूप में बाहर निकलते हैं।

मानव खून एवं पेशाब में कुछ पदार्थों की सांद्रता

पदार्थ	खून में प्लाज़्मा	पेशाब में
अकार्बनिक आयन		
सोडियम	0.30	0.30
क्लोराइड	0.40	0.60
नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ		
अमोनियम आयन	0.001	0.04
यूरिया	0.03	2.0
संरक्षित पदाथ		
ग्लूकोस	मात्रा में विविधता	नहीं होता
प्रोटीन	7.0	नहीं होता

यह तालिका मूल लेख में नहीं थी। अन्य स्रोत से संकलित।

देते थे। यात्रा के दौरान दिखाई देने वाले टापू, सूरज एवं तारों की बदलती स्थिति, तटीय प्रदेशों की वनस्पति, जीव-जंतु, समुद्र की गहराई, समुद्री जल धाराएं, मौसमी हवाएं, पानी का स्वाद-गंध, घुम्मकड़ पंछी, छिपे हुए खतरों, आदि के बारे में जहाज़ी अपने साथियों को विस्तार से बताते थे ताकि वे भी ज़रूरत पड़ने पर उन जगहों को पहचान सकें। विशाल समुद्र में भटक जाने के खतरों से सब वाकिफ थे इसलिए हर तिनके का सहारा लिया जाता था।

पृथ्वी पर कहीं भी अपनी जगह ठीक-ठीक तय करने के लिए दो जानकारियों की ज़रूरत होती है – अपना अक्षांश व देशांश। 16वीं सदी में खुले समुद्र में अक्षांश पता कर पाना तो संभव था लेकिन देशांतर पता करने के सटीक तरीके अब तक विकसित नहीं हुए थे। व्यापार-वाणिज्य, नए भूभागों की खोज और समुद्री यातायात को बढ़ावा देने के हिसाब से समुद्री यात्राओं का महत्व बढ़ता जा रहा था, इसलिए ज़रूरी था कि ऐसी विधियां विकसित की जाएं जिनकी मदद से जहाज़ में सफर करते हुए भी समुद्र में देशांतर पता किए जा सकें।

इस समय तक जो विधियां उभरकर आई थीं उनमें कुतुबनुमा यानी चुंबकीय कंपास से देशांतर पता करना, बृहस्पति के उपग्रहों की मदद से देशांतर निकालना, चांद और किसी तारे के बीच कोणीय दूरी से देशांतर की गणना करना (किन्हीं दो स्थानों के स्थानीय समय की तुलना से) आदि थीं।

चुंबकीय दिक्सूचक का इस्तेमाल शुरू होने के बाद धीरे-धीरे यह समझ में आया कि अलग-अलग जगहों पर भौगोलिक उत्तर और चुंबकीय उत्तर के बीच का विचलन कोण, और दिक्सूचक का नमन कोण एक-सा नहीं होता। फिर कोशिश भी की गई कि चुंबकीय विचलन कोण और चुंबकीय नमन कोण की विस्तृत तालिकाएं व नक्शे* बनाए जाएं। जहां का भी देशांतर पता करना हो वहां पर इन दोनों के सटीक अवलोकन लेकर, फिर इन तालिकाओं व नक्शों की मदद से नाविक अपना देशांतर पता कर सकते थे। लेकिन पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र काफी अस्थिर है, उसमें लगातार बदलाव होते रहते हैं; इसलिए यह विधि ज़्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाई।

सन् 1610 में गैलीलियो ने अपनी दूरबीन से बृहस्पति ग्रह और उसके उपग्रहों को देखा। बाद के अवलोकनों से समझ में आया कि इन चार उपग्रहों

** दिक्सूचक के विचलन कोण, नमन कोण और संबंधित तालिकाओं के बारे में और जानकारी के लिए संदर्भ के अंक 30 में प्रकाशित लेख, 'चुंबक इतिहास के आइने में', देखिए।*

में से उपग्रह इवो हर 42.5 घंटे के बाद बृहस्पति की छाया में छुप जाता है यानी इसे ग्रहण लगता है। ग्रहण की यह घटना एक नियमित अंतराल से होती रहती है। उस समय किसी ने सुझाव दिया कि ग्रहण की इस घटना को आधार बनाकर एक तालिका बनाई जाए जिसमें ग्रहण की यह घटना अलग-अलग देशांतर रेखाओं से स्थानीय समय के हिसाब से किस समय दिखाई देगी यह जानकारी दी गई हो।

बृहस्पति के उपग्रह वाली विधि* के साथ प्रमुख समस्या थी कि उपग्रह को लगने वाला ग्रहण देखने के लिए काफी बड़ी परावर्तक दूरबीन इस्तेमाल करनी पड़ती थी। एक हिचकौले खाते समुद्री जहाज़ से इतने सूक्ष्म अवलोकन कर पाना खासा कठिन काम था। इसलिए यह विधि महाद्वीपीय भूमि पर व तटीय इलाकों में तो काफी लोकप्रिय थी, परन्तु समुद्री जहाज़ों पर यह अपना स्थान न बना सकी।

चांद से देशांतर

इसी तरह 16वीं सदी में एक अन्य विधि में चांद और किसी तारे के बीच की कोणीय दूरी को नापकर देशांतर पता करने का तरीका सुझाया गया था। 16वीं और 17वीं सदी में आकाशीय पिंडों के बीच कोणीय दूरी नापने के ज़्यादा सटीक उपकरण विकसित किए जा रहे थे। गणितीय गणनाओं के लिए सूत्र भी बनाए जा रहे थे। इन हालातों में 1750 के आसपास जाकर चांद और तारों (या सूर्य) की आपसी दूरी वाली विधि सार्थक लगने लगी।

1750 के लगभग टोबियस मेयर ने हरेक देशांतर के लिए किसी एक निश्चित तारे और चांद के बीच की कोणीय दूरी की एक तालिका पेश की। हालांकि तालिका से समुद्री प्रवास के दरमियान जहाज़ किस देशांतर पर है यह पता किया जा सकता था; बस एक ही मुश्किल थी कि ये गणनाएं काफी जटिल किस्म की थीं। 18वीं सदी में इस विधि का इस्तेमाल करते समय किसी घड़ी और कोण नापने वाले उपकरणों की मदद से निम्न अवलोकन लिए जाते थे।

– चांद की क्षितिज से कोणीय ऊंचाई।
– चुने हुए तारे या सूरज की क्षितिज से कोणीय ऊंचाई।
– चांद और चुने हुए तारे या सूरज के बीच की कोणीय दूरी।
– इन अवलोकनों का समय (औसत निकालने के लिए)।
– स्थानीय समय निकालना।

** इस विधि के बारे में संदर्भ के अंक 36 में कुछ चर्चा की गई है।'बृहस्पति के उपग्रह, देशांतर रेखाएं और प्रकाश की गति' लेख देखिए।*

इस सब के बाद कहीं जाकर आप अपना देशांतर मालूम कर सकते थे।

एक अन्य विधि थी किसी सटीक एवं दक्ष घड़ी की मदद से देशांतर मालूम करना। इस विधि का सिद्धांत काफी सरल था। इस तरीके में जहाज़ में मौजूद घड़ी को यात्रा के शुरुआती बंदरगाह पर स्थानीय समय के हिसाब से सेट किया जाता था, फिर पूरी यात्रा के दौरान यह घड़ी उस शुरुआती बंदरगाह के समय के हिसाब से चलती रहती थी। यात्रा के दौरान जहां कहीं भी देशांतर पता करना हो, बीच समुद्र में स्थानीय समय पता करते थे। अब शुरुआती बंदरगाह के समय से तुलना करके, दोनों समयों के बीच के अंतर के व शुरुआती बंदरगाह के देशांतर के आधार पर यह मालूम करते थे कि जहाज़ कितने डिग्री देशांतर पर है। (स्थानीय समय एवं देशांतर पता करने संबंधी बॉक्स पृष्ठ 64 व 66 पर)

इस विधि की सबसे प्रमुख दिक्कत थी कि ऐसी दक्ष एवं सटीक घड़ी बना पाना खासा कठिन काम था। इस विधि को सबसे पहले सन् 1524 में सुझाया गया था लेकिन ऐसी घड़ी आखिरकार सन् 1760 में कहीं जाकर बन सकी।

कुछ खगोलविद क्रॉस-स्टाफ की मदद से चांद और किसी एक निश्चित तारे के बीच कोणीय दूरी निकाल रहे हैं। ग्लोब पर अलग-अलग देशांतर रेखाओं पर यह कोणीय दूरी क्या होगी इसका अंदाज़ भी लगाया जा सकता है। क्रॉस-स्टाफ की मदद से किसी इमारत की ऊंचाई भी मालूम की जा सकती है।

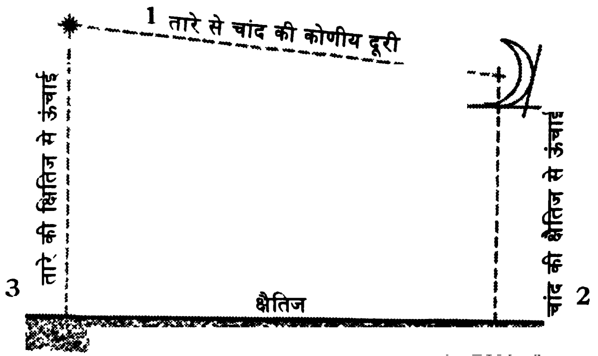

चांद-तारे की दूरी वाली विधि: इस विधि में तीन जानकारियों का मालूम होना ज़रूरी है। **एक:** चांद और तय किए गए तारे के बीच की कोणीय दूरी। **दो:** दिख रहे क्षैतिज से चांद की ऊंचाई। **तीन:** दिख रहे क्षैतिज से तारे की ऊंचाई। इसके बाद गणनाओं से देशांतर पता किया जाता था। वैसे इस विधि का इस्तेमाल तभी किया जा सकता था जब अवलोकनकर्त्ता को क्षैतिज साफ -साफ दिख रहा हो। यह विधि अमावस्या के दिन और बादल वाले दिनों में भी उपयोगी नहीं थी।

17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में क्रिश्चिन ह्याइगन ने पेंडुलम की गति को समय में तब्दील करने का तरीका खोज लिया था। लेकिन समुद्री सफर में पेंडुलम वाली घड़ियों की समय नापने की दक्षता को जहाज़ के हिचकोले, आर्द्रता, गुरुत्वाकर्षण वगैरह प्रभावित करते थे। इसलिए महाद्वीपों पर जहां ऐसी घड़ियां व्यावहारिक थीं, वहीं समुद्र में अनुपयोगी।

एक बात तो तय है कि चाहे आप बृहस्पति के उपग्रह वाली विधि अपनाएं, या चांद और तारे वाली विधि या स्थानीय समयों की तुलना वाली विधि। हरेक विधि में समय की सूक्ष्मतम एवं शुद्धतम माप बेहद महत्वपूर्ण पक्ष बन गया था। समय के माप को मद्देनज़र रखते हुए हम अगले हिस्से में देशांतर पता करने के लिए घड़ी वाली विधि पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे।

किस्सा घड़ियों का

17वीं सदी के आखिर तक देशांतर रेखाओं की समस्या बरकरार थी। अभी भी समुद्री यात्राओं के दौरान जहाज़ किसी अक्षांश रेखा को पकड़कर या कुतुबनुमा के सहारे सफर तय करते थे और देशांतर रेखाओं का अंदाज़ा लगाते थे। 1707 में ओरफोर्ड के पास सर क्लाउडिस्ली शॉवेल का जहाज़ रास्ता भटक जाने के कारण दुर्घटनाग्रस्त

देशांतर व स्थानीय समय

भारत का नक्शा देखिए। पश्चिम से पूर्व का विस्तार लगभग 68 डिग्री से 98 डिग्री पूर्व देशांतर तक है। यानी यह विस्तार लगभग 30 डिग्री है। पृथ्वी अपनी धुरी के इर्द-गिर्द यानी एक चक्कर यानी 360 डिग्री 24 घंटे में घूमती है। इस हिसाब से 30 डिग्री के लिए 2 घंटे लगेंगे। समय के हिसाब से देखा जाए तो हिन्दुस्तान के एकदम पश्चिमी बिन्दु और एकदम पूर्वी बिन्दु के बीच लगभग 2 घंटे का फर्क है।

आपको मालूम ही होगा कि हिन्दुस्तान के लगभग बीच से गुज़रने वाली 82.5 डिग्री वाली देशांतर रेखा के समय को भारत का मानक समय माना जाता है। यह रेखा इलाहाबाद से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी से गुज़रती है। यानी 82.5 डिग्री वाली रेखा पर जब सुबह के 6 बजे हों तो पूरे भारत में वही समय माना जाएगा; भले ही भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में दिन चढ़ आया हो या भुज-कच्छ में रात का अंधियारा भी अभी नहीं छंट पाया हो।

लेकिन इस मानक समय के बावजूद किसी शहर का अपना स्थानीय समय होता है। कोई शहर मानक समय रेखा से कितने डिग्री पूर्व मे है या पश्चिम में स्थित है इससे उस शहर या गांव का स्थानीय समय मालूम कर सकते हैं। स्थानीय समय की गणना इस तरह से करनी होगी।

यदि आपका गांव या शहर 82.5 डिग्री देशांतर से पश्चिम में है तो आपका स्थानीय समय, मानक समय से पीछे चल रहा है। बतौर उदाहरण पुणे (महाराष्ट्र) का देशांतर लगभग 73 डिग्री है। यानी मानक समय रेखा से 9 डिग्री पश्चिम में है इसलिए पुणे का स्थानीय समय मानक समय से लगभग 36 मिनट पीछे चल रहा है। दूसरे शब्दों में भारतीय मानक समय जब सुबह 6 बजे का समय दिखा रहा होता है तब पुणे के स्थानीय समय के अनुसार 5 बजकर 24 मिनट हुए होते हैं।

यदि आपकी रुचि अपने गांव या शहर का स्थानीय समय पता करने में हो तो इस लेख में दिए दूसरे बॉक्स को पढ़कर या एटलस की मदद से देशांतर पता कीजिए। फिर भारतीय मानक समय रेखा से तुलना करके ऊपर बताए गए तरीके से पता किया जा सकता है कि आपके यहां का स्थानीय समय भारतीय मानक से कितने मिनट आगे या पीछे है। ज़मीन में गड़ी किसी लंबवत छड़ी की मदद से स्थानीय समय मालूम करने का तरीका अगले बॉक्स में दिया ही है।

हो गया और सभी मुसाफिर मारे गए। ब्रिटिश जहाज़ के साथ हुई इस घटना की वजह से तत्कालीन ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव पड़ा कि सरकार भी देशांतर रेखाओं की समस्या को सुलझाने में रुचि ले।

1714 में ब्रिटिश संसद ने इस संदर्भ में किसी उपयुक्त विधि की खोज के लिए बीस हज़ार पौंड इनाम की घोषणा की। शर्त थी कि यह विधि ज़मीन के साथ-साथ समुद्र के लिए भी उपयोगी होनी चाहिए। इस एक्ट में कुछ और शर्तें भी थीं।

दूसरी सबसे महत्वपूर्ण शर्त थी कि विधि की जांच बोर्ड ऑफ लोंगिट्यूड करेगा। इस जांच के लिए बोर्ड द्वारा निर्धारित जहाज़ इंग्लैंड से वेस्ट इंडीज़ के लिए रवाना होगा। यह सफर लगभग 60 दिन का होगा। इस दौरान परखी जा रही विधि द्वारा 2 मिनिट तक की घट-बढ़ ही माफ होगी। (यानी 2 सेकेंड प्रतिदिन)। यदि कोई भी विधि या घड़ी इतनी दक्षता से समय की नाप कर सके तो वह 20 हज़ार पौंड के इनाम की हकदार होगी। यदि घड़ी या विधि समय की गणना में 1 मिनिट तक की गलती करेगी तो उसे 10 हज़ार पौंड मिलेंगे।

वैसे आप देखें तो एक दिन में 86,400 सेकेंड होते हैं। यदि कोई घड़ी एक दिन में सिर्फ 9 सेकेंड की गलती भी करे तब भी घड़ी की दक्षता 99.9 प्रतिशत होगी। लेकिन इस एक्ट के मुताबिक तो जो घड़ी 4 सेकेंड प्रतिदिन की गलती करे उसे सिर्फ दस हज़ार पौंड का इनाम दिया जाना था। यानी समय के शुद्धतम माप को बहुत महत्वपूर्ण माना गया था।

उस समय के घड़ीसाज़ यह जानते थे यह कितना कठिन लक्ष्य है। तत्कालीन पेंडुलम घड़ियों पर तापमान, दबाव, आर्द्रता, गुरुत्वाकर्षण, जहाज़ों के हिचकोले आदि सभी का प्रभाव पड़ता था। ऐसे में इन घड़ियों से इतनी दक्षता से समय नाप पाना खासा कठिन काम था।

जॉन हैरीसन और समुद्री घड़ियां

इसी दौर में जॉन हैरीसन (1696-1776) भी एक खोजी था जिसकी घड़ियां बनाने में रुचि थी। 1725 में उसने समुद्री जहाज़ों के हिसाब से घड़ियां बनाने का काम शुरू किया। चार साल बाद वह पहली भरोसेमंद घड़ी बनाने में कामयाब हुआ। अगले तीस साल वह घड़ी में सुधार और उन्हें अधिक दक्ष बनाने की कोशिश करता रहा। 1761 में उसने अपनी घड़ी के एच-4 मॉडल के तैयार हो जाने की घोषणा की।

एक बार घड़ी पूरी हो जाने के बाद बोर्ड ने जांच-यात्रा की घोषणा

देशांतर पता करना

किसी भी स्थान का देशांतर पता करने के लिए आपको इन तीन जानकारियों की ज़रूरत होगी:

– किसी स्थान विशेष का देशांतर
– उस स्थान का मानक समय
– आप जहां रहते हैं वहां का स्थानीय समय

मान लिजिए हमें होशंगाबाद का देशांतर पता करना है। इस प्रयास में यह जानकारी महत्वपूर्ण है कि भारत का मानक समय इलाहाबाद से लगभग 50 किलोमीटर दूर से गुज़रने वाली 82.5 डिग्री देशांतर रेखा के आधार पर तय होता है। लेकिन बोलचाल में इलाहाबाद का ही ज़िक्र करते हैं। आइए अब इस जानकारी के आधार पर आगे बढ़ें और सबसे पहले ऊपर वाली तीनों चीज़ें पता कर लें।

1. हमें पता है कि इलाहाबाद का देशांतर लगभग 82 डिग्री है।

2. रेडियो, टेलिविज़न आदि पर जो समय बताया जाता है, जिससे हम अपनी घड़ी सैट करते हैं वह दरअसल इलाहाबाद यानी 82.5 डिग्री देशांतर का स्थानीय समय है।

3. किसी भी जगह यह तय करना सबसे आसान होता है कि वहां के स्थानीय समय के अनुसार ठीक बारह कब बजते हैं। बस आपको इतना भर देखना है कि किसी भी ठीक लंबवत खड़ी छड़ी की छाया सबसे छोटी कितने बजे होती है, वही है आपके स्थानीय समय के अनुसार दोपहर के ठीक बारह।

इसके लिए आपको किसी भी लंबवत खड़ी छड़ी की छाया को दोपहर 11:00 बजे से 1:00 बजे के बीच पांच–पांच या दो–दो मिनटों के अंतराल पर देखना होगा ताकि पता लगा पाएं कि सबसे छोटी छाया कितने बजे होती है।

साल भर में किसी भी दिन प्रयोग करें, होशंगाबाद में छड़ी की सबसे छोटी छाया लगभग 12 बजकर 19 मिनट पर बनती है। यानी कि जब इलाहाबाद में 12 बजकर 19 मिनट हुए हैं, तब होशंगाबाद के स्थानीय समय के अनुसार 12 बजते हैं।

अब हमें तीनों जानकारियां पता चल गईं। होशंगाबाद और इलाहाबाद के स्थानीय समय में 19 मिनट का अंतर है। हमें मालूम है कि पृथ्वी चार मिनट में एक डिग्री घूमती है (24 घंटे में 360 डिग्री)। यानी कि इन दोनों शहरों के देशांतर में लगभग 5 डिग्री का अंतर होना चाहिए। चूंकि होशंगाबाद में बारह बाद में बजते हैं इसलिए होशंगाबाद का देशांतर इलाहाबाद से पश्चिम में या दूसरे शब्दों में 5 डिग्री कम होगा। यानी होशंगाबाद का देशांतर लगभग 77 डिग्री है।

है न तरीका आसान? आप भी यही प्रक्रिया अपनाकर अपने गांव या शहर का देशांतर पता कर सकते हैं।

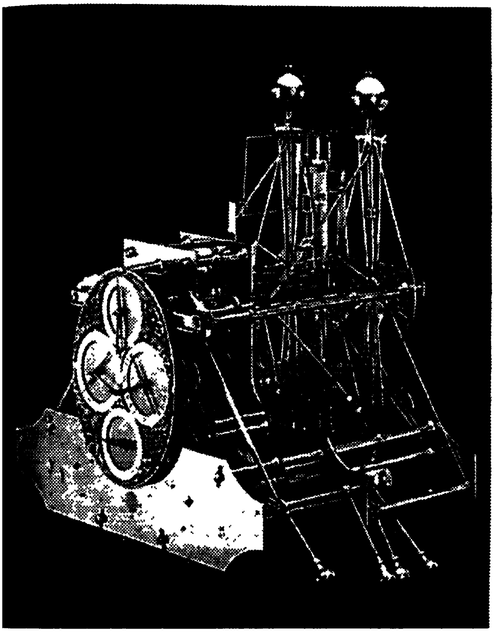

एच-1 घड़ी: हैरीसन द्वारा तैयार की गई पहली घड़ी एच-1, इसकी कुल ऊंचाई 63 इंच और वज़न लगभग 36 किलो था। एच-1 काफी बड़ी और भारी घड़ी थी। हैरीसन ने बाद में बनाई घड़ियों को छोटा और हल्का बनाने की कोशिश की थी।

की। इस यात्रा में एच-4 के साथ हैरीसन का बेटा विलियम था और बोर्ड ने अपने एक प्रतिनिधी के रूप में रॉबिन्सन को भी साथ भेजा था। घड़ी का समय सेट कर दिया गया था। यात्रा का पहला पड़ाव पोर्ट्समाऊथ में था जहां पोर्ट्समाऊथ रॉयल सोसायटी के खगोलविद जॉन रॉबर्टसन को एच-4 के समय की जांच करनी थी, फिर खगोलीय अवलोकनों से पोर्ट्समाऊथ के स्थानीय समय की गणना कर एच-4 को स्थानीय समय के हिसाब से सेट करना था। साथ ही उसे अपने अवलोकन, घड़ी के समय वगैरह की जानकारी सीलबंद कर लंदन भेजनी थी।

जब जहाज़ पोर्ट्समाऊथ पहुंचा तो विलियम ने रॉबर्टसन को घड़ी सेट करने की अनुमति दी। आगे का सफर मेडेरा द्वीप के अक्षांश को पकड़कर शुरू हुआ और 19 जनवरी 1762 को वे लोग डिसेडा, एंटीगुआ द्वीप से होते हुए जैमेका पहुंचे। जैमेका पहुंचने पर वहां के गवर्नर ने बताया कि वापसी की यात्रा के लिए जून, 1762 से पहले कोई जहाज़ नहीं है।

अचानक स्पेन से युद्ध छिड़ जाने की वजह से विलियम और रॉबिन्सन को एक जहाज़ से तुरंत लौटना पड़ा। खराब मौसम और युद्ध के खतरे के बीच वे किसी तरह एच-4 को बचाकर लंदन पहुंचे, जहां जॉन हैरीसन ने गणना कर बताया कि घड़ी ने मात्र 1 मिनिट और 54 सेकेंड का समय खोया है। वेस्ट इंडीज़ का यह सफर 147 दिनों का था। हालांकि ये परिणाम बोर्ड ने घोषित नहीं किए थे, फिर भी

एक्ट की शर्तों को पूरा करने की वजह से लोगों को एक बारगी लगा कि हैरीसन 20 हज़ार के इनाम का प्रबल दावेदार है।

इस पूरे जांच अभियान को लेकर बोर्ड का रुख कुछ फर्क था। बोर्ड ने रॉबर्टसन और रॉबिन्सन के अवलोकनों एवं गणनाओं को तीन गणितज्ञों के पास भेजा ताकि घड़ी के बारे में कोई ठोस राय कायम की जा सके। बोर्ड पोर्ट्समाऊथ में रॉबर्टसन की गणनाओं को स्वीकार नहीं कर पा रहा था, साथ-ही-साथ जैमेका के देशांतर को लेकर भी बोर्ड दुविधा में फंसा हुआ था। इन सारी समस्याओं का एक ही हल दिख रहा था कि एच-4 की दोबारा जांच की जाए।

बोर्ड ने साफ-साफ घोषणा कर दी कि एच-4 ने देशांतर रेखाओं वाला कोई इनाम नहीं जीता। हां, एच-4 एक जन उपयोगी खोज है इसलिए उसे 2500 पौंड का इनाम दिया जा रहा है।

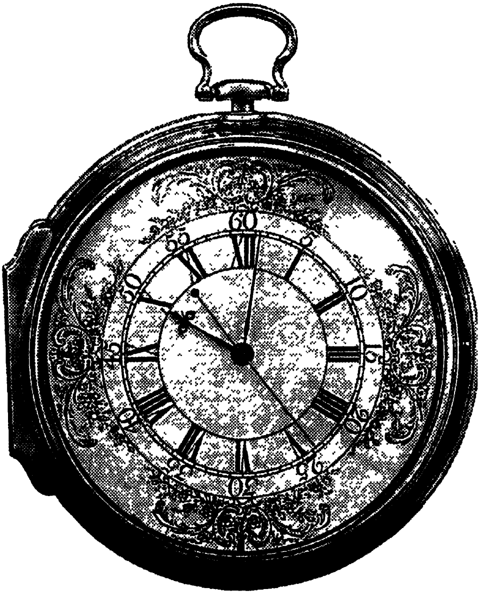

इनामी घड़ी एच-4: इस घड़ी की रिपेयरिंग करने के बाद लिया गया फोटोग्राफ जिसमें घड़ी का डायल वगैरह दिखाई दे रहा है। इसका व्यास सिर्फ 13 से. मी. है जिससे स्पष्ट होता है कि हैरीसन ने इसे कितना छोटा, हल्का और उपयोगी बना दिया था।

एच-4 का दूसरा जांच अभियान

पहले तो हैरीसन ने बोर्ड के दोबारा जांच के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। पहले जांच अभियान के समय से ही हैरीसन को ऐसा लग रहा था कि चांद वाली विधि एक प्रबल दावेदार बनकर उभर रही है। खगोल और गणित को समझने वाले काफी सारे विशेषज्ञ और शोधकर्ता तो बोर्ड में हैं, लेकिन उसकी अविश्वसनीय दक्षता वाली घड़ी पर कौन विश्वास करेगा। हैरीसन यह भी मानने लगा था कि बोर्ड के सदस्य चांद वाली विधि के पक्षधर हैं। खैर काफी ऊहा -

पोह के बाद हैरीसन ने एच-4 की दूसरी जांच के लिए मन बना ही लिया।

हैरीसन और बोर्ड की चर्चा के बाद समुद्री यात्रा के पुख्ता इंतज़ाम किए गए। इस बार यात्रा का आखिरी पड़ाव जैमेका की बजाए बारबाडोस रखा गया। इस सफर में हैरीसन के बेटे विलियम के साथ दो खगोलविद नेविल मेस्केलीन और चार्ल्स ग्रीन भी थे। उन्हे बारबाडोस के देशांतर आकाशीय विधि से पता करने थे। इस सफर के शुरुआती दिन से ही मेस्केलीन ने अपनी चांद वाली विधि के प्रति विशेष प्रेम उजागर किया।

बारबाडोस तक सफर पहली यात्रा का दुहराव ही था। पोर्ट्समाऊथ में एच-4 की जांच की गई, समय मिलाया गया वगैरह। बारबाडोस में दोनों खगोलविदों से विदा लेकर विलियम लंदन वापस आया।

मेस्केलीन और ग्रीन बारबाडोस म बृहस्पात के उपग्रह वाली विधि से बारबाडोस के देशांतर नए सिरे से निकाल रहे थे। उसी समय पोर्ट्समाऊथ में जॉन ब्रेडली भी इसी विधि का इस्तेमाल कर रहा था। इन दोनों के अवलोकनों की तुलना करने पर पता चला कि इन दोनों जगहों के देशांतरों के बीच 3 घंटे, 54 मिनिट और 18.15 सेकेंड का अंतर है। इतनी गणनाएं हो जाने के बाद हैरीसन की एच-4 घड़ी के समय से मिलान किया गया। एच-4 के मुताबिक यह समयांतर 3 घंटे, 54 मिनिट और 57.27 सेकेंड था। यानी पोर्ट्समाऊथ में समय मिलाने के बाद 46 दिन के सफर में एच-4 में सिर्फ 39.1 सेकेंड का फर्क आया था। अब तो हैरीसन को पूरा इनाम दिया जा सकता था।

बोर्ड अभी भी पशोपेश में था क्योंकि एच.4 की तकनीक के बारे में बोर्ड को कोई जानकारी नहीं थी। यदि और घड़ियां बनानी हों तो क्या वे एच-4 जैसी ही दक्ष होंगी, घड़ी की कीमत कितनी होगी, क्या उसे सामान्य समुद्री जहाज़ भी खरीद सकेंगे, आदि कई सवाल थे जिनके जवाब अभी तक नहीं मिले थे। अब बोर्ड ने 1714 के एक्ट में संशोधन का मन बना लिया। ब्रिटिश संसद ने एक्ट में संशोधन कर इनाम को 10-10 हज़ार के दो हिस्सों में बांट दिया। नई शर्तों के मुताबिक हैरीसन को सिर्फ 10 हज़ार पौंड का इनाम ही मिल सकता था।

इन इनामों की कड़ी में टेबियस मेयर का नाम भी था जिसने चांद वाली विधि की तालिकाएं तैयार की थीं जिनकी जांच मेस्केलीन ने बारबाडोस यात्रा के दौरान की थी। मेयर को 3,000 पौंड का इनाम दिया गया और स्विस गणितज्ञ लियोनॉर्ड ओयलर को गणितीय सूत्र बनाने के

लिए तीन सौ पौंड का पुरस्कार मिला।

इनाम की प्रक्रिया

बहरहाल बोर्ड ने साफतौर पर इस बात पर ज़ोर दिया कि हैरीसन एच-4 से संबंधित तकनीक को बोर्ड द्वारा नियुक्त कमेटी के सामने प्रस्तुत करे, तब उसे इनाम की राशि दी जाएगी। आखिरकार हैरीसन ने बोर्ड को सूचित किया कि वह तकनीकी जानकारी देने के लिए तैयार है। समिति ने हैरीसन से तकनीक समझी व कुछ सवाल-जवाब किए। कमेटी की रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद बोर्ड ने हैरीसन से इनाम के लिए आवेदन करने के निर्देश दिए। हैरीसन के हिस्से के 10 हज़ार पौंड में से 2500 पौंड की रकम काटी जानी थी क्योंकि यह रकम उसे पहले ही दी जा चुकी थी। साथ ही शर्त थी कि उसे एच-4 चालू हालत में बोर्ड को देनी होगी। आखिरकार 7500 पौंड के लिए हैरीसन ने एच-4 सौंप दी।

अब सवाल बच जाता है कि बचे दस हज़ार के इनाम का क्या हुआ? 1765 के संशोधित एक्ट के मुताबिक यदि हैरीसन दो और घड़ियां बोर्ड को बनाकर दे जो दक्षता में एच-4 जैसी ही हों तो उसे शेष इनाम भी मिल सकता था।

विधि संबंधी सभी शंकाओं के जवाब के लिए ज़रूरी था कि हैरीसन दो और घड़ियां बनाए। 1772 में अगली घड़ी पूरी तरह बनकर तैयार हो गई। हैरीसन की इस घड़ी को ब्रिटेन के सम्राट जॉर्ज तृतीय ने रिचमंड पार्क स्थित अपनी निजी वेधशाला में जांच के लिए रखा। जॉर्ज इस घड़ी से बेहद प्रभावित हुए और उन्होंने अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल करते हुए संसद में एक बिल पारित करवाया जिसके अनुसार हैरीसन को बचे 10 हज़ार पौंड में से 8750 पौंड का इनाम बतौर प्रोत्साहन दिया गया।

वैसे अब तब हैरीसन को मिले इनाम और 1737 से बोर्ड द्वारा दी गई वित्तीय सहायता को जोड़ा जाए तो हैरीसन को लगभग 23 हज़ार पौंड की रकम मिल चुकी थी। हैरीसन अपने इनाम का दूसरा हिस्सा पाकर संतोष का अनुभव कर रहा था। आखिर उसने अपनी ज़िंदगी के 45 साल एक दक्ष घड़ी बनाने में जो खर्च किए थे।

माधव केलकर: संदर्भ पत्रिका से संबंद्ध।

यह लेख 'द क्वेस्ट फॉर लोंगिट्यूड' विलियम जे. एच. एंड्र्यूस द्वारा संपादित, हार्वर्ड कॉलेज द्वारा प्रकाशित किताब में दी गई जानकारियों पर आधारित है।

एकलव्य प्रकाशन

चित्रकथाएँ

- रूसी पूसी
- चूहे को मिली पेंसिल
- बिल्ली के बच्चे
- मैं भी
- नाव चली
- भालू ने खेली फुटबॉल
- अनोखी प्रदर्शनी
- टिपिक...पाँ...भर्र
- गुब्बारे
- पास या नापास
- पत्ते ही पत्ते

पढ़ना और गाना

- लोमड़ी और ज़मीन
- आज़ादी की नुक्ती
- प्यारा लड्डू
- हमको फिर छुट्टी
- कहानी संग्रह
- कविता संग्रह
- नजानू के रंग
- हड्डी
- बाँकी–बाँकी धूप
- फर फर उड़ी पतंग
- छूटकी

करना, गढ़ना और

- खेल–खेल में
- कबाड़ से जुगाड़
- खिलौनों का बस्ता
- माचिस की तीलियों के खेल
- वर्ग पहेली
- एक आधार अनेक आकार
- तितलियाँ और अन्य खेल
- खेल खिलौने

इनके अलावा भी और बहुत सी पुस्तकें

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क:

एकलव्य, ई-7/453 एच.आई.जी. अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (म.प्र.)
फोन-563380, फैक्स-561703, ई-मेल : eklavyamp@vsnl.com

सवालीराम

अंक 35 में सवालीराम से पूछे गए सवालों में से एक सवाल का जवाब यहां दे रहे हैं। यह सवाल *बलदेव जुमनानी, होशंगाबाद* ने पूछा था। यह जवाब हमें *बजरंग लाल जेठू, सीकर राजस्थान* द्वारा भेज गए जवाब पर आधारित है।

सवाल: हम कहते हैं कि वायुमंडलीय गैसें निरंतर बनती रहती हैं। ओज़ोन जो हमारे वायुमंडल में है वो भी लगातार बनती होगी। फिर ओज़ोन परत में छेद कैसे बना? ओज़ोन की परत तो बनी रहनी चाहिए?

जवाब: आपके सवाल के पहले हिस्से के बारे में यह कहा जा सकता है कि हमारे वायुमंडल में ऑक्सीजन का, कार्बन का, नाइट्रोजन का एक चक्र चलता रहता है जिसके तहत गैसें जीव-जंतुओं, वनस्पतियों, विभिन्न धातुओं, अधातुओं से होती हुई पुनः वायुमंडल में पहुंचती हैं। एक सामान्य संतुलन की स्थिति में तो वायुमंडल में विभिन्न गैसों का प्रतिशत लगभग स्थिर बना रहता है। जब किन्हीं कारणों से (विशेषकर मानवीय हस्तक्षेप से) यह संतुलन बिगड़ जाता है तो वायुमंडल में किसी एक गैस की मात्रा सामान्य स्तर से ज़्यादा हो जाती है या कभी-कभी कम भी हो जाती है। उदाहरण के लिए इन दिनों वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा सामान्य स्तर से ज़्यादा हो रही है।

अब हम ओज़ोन के सवाल पर आते हैं। जिस तरह हीरा और ग्रेफाइट कार्बन के दो रूप हैं उसी तरह रासायनिक दृष्टि से ओज़ोन, ऑक्सीजन का अपरूप यानी आइसोटोप है। ओज़ोन में भी ऑक्सीजन के ही परमाणु होते हैं लेकिन इनकी संख्या एवं व्यवस्था भिन्न होती है। ऑक्सीजन के एक अणु में जहां ऑक्सीज़न के दो परमाणु होते हैं, वहीं ओज़ोन के एक अणु में ऑक्सीज़न के तीन परमाणु होते हैं। इसका रासायनिक संकेत O_3 है। ओज़ोन नीले रंग की, तीखे गंधवाली गैस है जो सांस के साथ फेफड़ों में चली जाए तो बेचैनी पैदा करती है।

ओज़ोन वायुमंडल के समताप मंडल नामक हिस्से में बहुतायत में पाई जाती है। वैसे तो हमारे वायुमंडल में ओज़ोन की कुल मात्रा का 95 प्रतिशत समताप मंडल (Stratosphere) में ही पाया जाता है। ऐसा नहीं है कि समताप मंडल में सिर्फ ओज़ोन ही पाई जाती हो, अन्य गैसें भी होती हैं इस इलाके में। साथ ही यह भी सच है कि समताप मंडल में ओज़ोन कोई

परत बनाकर नहीं रहती बल्कि ओज़ोन के अणु स्वतंत्र रूप से समताप मंडल में 10 किलोमीटर से 50 किलोमीटर की ऊंचाई तक होते हैं।

समताप मंडल में ओज़ोन के बनने की प्रक्रिया काफी रोचक है। सूरज की रोशनी के साथ आ रही पराबैंगनी किरणें समताप मंडल में ऑक्सीजन परमाणुओं को जोड़कर ओज़ोन के अणु बनाती हैं। दरअसल होता यह है कि सूर्य प्रकाश के साथ आ रही विभिन्न तरंग लंबाई की पराबैंगनी किरणों में से वे किरणें जिनकी तरंग लंबाई 118 से 242 नैनोमीटर तक है, 2 परमाणु वाली ऑक्सीजन को जोड़कर, 3 परमाणु वाली ओज़ोन बनाती हैं।

1 ऑक्सीजन अणु + 1 ऑक्सीजन परमाणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में) = 1 ओज़ोन अणु

इस तरह पराबैंगनी किरणों की ऊर्जा ओज़ोन बनाने में खर्च हो जाती है और ओज़ोन लगातार बनती रहती है। यह तो हुई ओज़ोन के बनने की बात। ओज़ोन के अणु काफी अस्थिर होते हैं। इन ओज़ोन के अणुओं को तोड़ने का काम भी पराबैंगनी किरणें ही करती हैं। वे पराबैंगनी किरणें जिनकी तरंग लंबाई 242 से 290 नैनोमीटर होती है वे ओज़ोन को तोड़कर ऑक्सीजन बनाती हैं। यानी ओज़ोन इन पराबैंगनी किरणों को सोखकर ऑक्सीजन के परमाणुओं के रूप में बिखर जाती है। इसे इस तरह भी समझ सकते हैं:

1 ओज़ोन अणु (पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति में) = 1 ऑक्सीजन अणु + 1 ऑक्सीजन परमाणु

इस तरह समताप मंडल में ओज़ोन का बनना और टूटना जारी रहता है। इस दो तरफा क्रिया में ऐसा संतुलन रहता है कि वायुमंडल में ओज़ोन की पर्याप्त मात्रा मौजूद रहती है।

वैसे एक बात पर यदि आपने गौर किया होगा तो आप पाएंगे कि पराबैंगनी किरणों की 118 से 290 नैनोमीटर तरंग लंबाई वाली किरणें तो ओज़ोन को बनाने और मिटाने में खर्च हो जाती हैं। पराबैंगनी किरणों में इन्हीं तरंग लंबाई की किरणें धरती के जीवन के लिए घातक हैं, जिन्हें समताप मंडल में सोख लिया जाता है।

अब आते हैं सवाल के उस हिस्से पर कि ओज़ोन की परत नष्ट कैसे हो रही है। जैसाकि पहले भी कहा गया है कि वायुमंडलीय गैसों का एक चक्र चलता रहता है। इस चक्र में एक संतुलन की वजह से गैसों का एक सामान्य स्तर वायुमंडल में बना रहता है। लेकिन किन्हीं कारणों से यह संतुलन बिगड़ जाए तो गैस का यह सामान्य स्तर भी बिगड़ जाता है। कुछ साल पहले अंटार्कटिका में हो रहे शोध कार्यों

के दौरान यह पता चला कि बर्फ से ढके इस महाद्वीप पर जीवन के लिए घातक पराबैंगनी किरणें (290 नैनोमीटर से कम तरंग लंबाई की) ज़मीनी सतह तक आराम से पहुंच रही हैं। तत्पश्चात जो खोजबीन हुई उससे पता चला कि अंटार्कटिका के ऊपर मौजूद वायुमंडल में ओज़ोन की मात्रा बहुत कम रह गई है जिसकी वजह से पराबैंगनी किरणों की काफी बड़ी तादाद ओज़ोन बनाने और ओज़ोन तोड़ने का काम करने की बजाए धरती तक आ जाती है।

समताप मंडल में ओज़ोन की मात्रा के कम होने के कई कारण बताए गए हैं जिनमें से एक प्रमुख कारण सी. एफ. सी. नामक रसायन के अत्याधिक उपयोग से जुड़ा है। सी. एफ. सी. (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) रसायन का उपयोग फ्रिज, एयर कंडीशनर की गैस बनाने, पेंट, फोम, कीटनाशक बनाने आदि में किया जाता है। सी. एफ. सी की एक विशेषता यह है कि यह वायुमंडल में लंबे समय तक बना रहता है। सी. एफ. सी. जब पराबैंगनी किरणों के संपर्क में आता है तो अपने में से क्लोरीन के परमाणु छोड़ देता है। यह क्लोरीन ओज़ोन से क्रिया करके क्लोरीन मोनोऑक्साइड और ऑक्सीजन बनाता है। क्लोरीन मोनोऑक्साइड काफी अस्थिर किस्म का अणु होने की वजह से जल्दी ही क्लोरीन में फिर से बदल जाता है। और यह क्लोरीन एक बार फिर ओज़ोन से क्रिया करके फिर से क्लोरीन मोनोऑक्साइड और ऑक्सीजन बनाता है। फिर पुरानी क्रिया का दोहराव होता है। यानी एक स्थान विशेष पर ओज़ोन की मात्रा कम होना शुरू हो जाती है।

अब शायद एक सवाल यही बचता है कि ओज़ोन परत में छेद बनने की शुरुआत पृथ्वी के ध्रुवीय हिस्सों में ही क्यों हुई होगी? क्लोरीन द्वारा ओज़ोन से की जाने वाली रासायनिक क्रिया; जो ऊपर बताई गई है; के लिए ध्रुवीय प्रदेशों के ऊपर का ठंडा और अधिक दाब वाला वातावरण काफी अनुकूल साबित हुआ है।

ओज़ोन की परत में छेद काफी गंभीर समस्या है, इसलिए दुनिया के कई देशों ने सी. एफ. सी. के कम-से-कम इस्तेमाल की कवायत भी शुरू कर दी है। सी. एफ. सी. के बदले दूसरे रसायनों का उपयोग किया जाने लगा है ताकि ओज़ोन की परत को नुकसान कम पहुंचे।

फूलों का श्रृंगार है करोना

किशोर पंवार

फूलों की तो पहचान ही हैं, सुंदर, सुगंधित, रंग-बिरंगी पंखुड़ियां। हमारी नज़रें भी उन्हीं फूलों पर ठहरती हैं जिनमें ऐसी आकर्षक पंखुड़ियां हों – जैसे गुलाब, कमल, चम्पा, ग्लेडी-योलस और सूरजमुखी। परंतु घास, बांस और पीपल के फूलों को तो हम फूल मानने से ही इंकार कर देते हैं क्योंकि हमारी कल्पना में बैठे फूलों की रचना और रंग से वे मेल नहीं खाते। फिर भी वे हैं तो फूल ही।

आखिर एक सामान्य फूल में अंखुड़ियां, पंखुड़ियां, पुंकेसर और स्त्रीकेसर ही तो होते हैं। स्त्रीकेसर या पुंकेसर जैसे जनन अंगों में से कोई एक अंग हो तो भी हम उसे फूल कहने में नहीं हिचकिचाते – जैसे गिलकी, कद्दू, करेला या ककड़ी के फूल जो एकलिंगी हैं। परंतु रंगीन पंखुड़ियां न हों तो मामला ज़रा मुश्किल हो जाता है। यानी कुल मिलाकर पंखुड़ियां ही फूल की पहचान हैं।

जी हां, यह सच भी है क्योंकि फूलधारी पौधों के अलावा चीड़, देवदार और विद्या जैसे पेड़ों में भी प्रजनन अंग होते हैं जो कई बार फूलों से भी बड़े होते हैं। उनमें अंखुड़ियों जैसी हरी रचनाएं, पुंकेसर और स्त्रीकेसर जैसे महत्वपूर्ण अंग भी होते हैं, या तो साथ-साथ एक ही शंकु (Cone) में या अलग-अलग, परंतु फिर भी इन प्रजनन अंगों को कोई फूल नहीं कहता। न आम जन और न ही विज्ञान।

यानी एक बार फिर यह बात सामने आती है कि फूलों की पहचान तो नरम, नाज़ुक, सुगंधित व रंगीन पंखुड़ियों से ही होती है। अर्थात फूलों में पंखुडियां होना ज़रूरी है – चाहे बड़ी हों या छोटी, चाहे रंगीन या रंगहीन, सुगंधित हों या गंधहीन।

परंतु हमारे आस-पास कुछ ऐसे भी फूल हैं जिनमें आकर्षण का कारण उनकी पंखुड़ियां नहीं हैं; क्योंकि वे तो बहुत छोटी होती हैं जिन्हें देख पाना ही अत्यन्त मुश्किल होता है। जैसे बॉटल ब्रश के फूल, बबूल के पीले, रेन-ट्री के गुलाबी, केलेन्ड्रा के लाल, जामफल व यूकेलिप्टस के क्रीम कलर के तथा लाजवंती (छुई मुई) के हल्के जामुनी फूल। इन फूलों में सुंदरता व आकर्षण का कारण इनके असंख्य, स्वतंत्र, लंबे व तरह-तरह के रंग लिए हुए पुंकेसर हैं। ये ही इन फूलों को सुंदर बनाते हैं।

ऐसे ही शिरीष के हल्के हरे-पीले पुंकेसर ही इसके फूल को सुंदरता प्रदान करते हैं। अतः इन सब फूलों को हम 'पुंकेसर फूल' भी कह सकते हैं; इनकी तुलना में जिनकी पंखुड़ियां सुंदर व रंगीन होती हैं वे 'पंखुड़ी फूल' हुए।

अंखुड़ियां पत्तियां - पंखुड़ियां पुंकेसर

अधिकांश फूलों में पंखुड़ियों के नीचे मिलने वाली अंखुड़ियां हरे रंग

की होती हैं। इनका प्रमुख काम कली की रक्षा करना है। चूंकि ये हरी होती हैं इसलिए पत्तियों की तरह भोजन भी बनाती हैं। रंग रूप में ये उन पौधों की पत्तियों से मिलती हैं जिनके फूलों पर ये लगती हैं, जैसे गुलाब की अंखुड़ियां गुलाब की पत्तियों जैसी ही होती हैं। इनका विकास सामान्य पत्तियों से ही हुआ प्रतीत होता है क्योंकि इनमें पत्तियों की तरह ही तीन या तीन से ज़्यादा संवहन तन्तु (Vascular Strand) मिलते हैं।

कुछ फूलों जैसे वॉटर लिली आदि में पंखुड़ियां भी अंखुड़ियों से विकसित हुई लगती हैं। हालांकि अधिकांश फूलों में ये पुंकेसर से विकसित हुई हैं ऐसा प्रतीत होता है – ऐसे पुंकेसरों से जिनके परागकोष समाप्त हो गए, और पत्तियां नए काम के लिए पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गईं। इस मत को इस अवलोकन का समर्थन मिलता है कि अधिकांश फूलों की पंखुड़ियों में पुंकेसरों की तरह केवल एक वेस्कुलर सप्लाई मिलती है। अर्थात एक शिरा होती है।

फूलों की ये पंखुड़ियां अक्सर सुंदर होती हैं, सुगंधित होती हैं और स्वादिष्ट भी। तभी तो कई कीट इन्हें कुतर जाते हैं। इनकी सुंदरता से आकर्षित हो कीट तथा तरह-तरह के पक्षी फूलों की तरफ खिंचे चले आते हैं। एक तरह से पंखुड़ियां फूलों का विज्ञापन विभाग संभालती हैं। और ज़ाहिर है विज्ञापन के लिए दिखावा तो ज़रूरी है ही। जितना ज़्यादा दिखावा-छलावा, उतना ही ज़्यादा प्रचार प्रसार। यह तो हमने जान ही लिया है कि सुंदर पंखुड़ियों का काम, कीटों व पक्षियों को अपनी ओर आकर्षित करना है। इसी बात को कुछ यूं भी कहा जा सकता है कि फूल जितना ज़्यादा सुंदर व लुभावना होगा, उस पर मंडराने वालों की संख्या उतनी ही ज़्यादा होगी।

सुंदर वस्तु को थोड़ा और सजा दिया जाए, ज़रा और रंगीन बना दिया जाए तो सोने में सुहागा हुआ न। हमारे आस-पास ही कुछ ऐसे फूल भी हैं जिनमें उनकी पंखुड़ियों के पुंकेसरों को प्रकृति ने ज़रा ज़्यादा ही सजाया-संवारा है। फूलों में पाई जाने वाली ये अतिरिक्त रचनाएं सुंदर फूलों की अनुपम छटा में चार चांद लगा देती हैं। विश्वास न हो तो लेख के साथ छपे इन चित्रों को ही देख लें। ये तो केवल कुछ ही उदाहरण हैं, आपके आस-पास तो ऐसे और बहुत से फूल मिलेंगे। वैज्ञानिकों ने इस रचना को नाम दिया है करोना (Corona) – यानी ताज। आइए ऐसे ही कुछ फूलों को देखें और उन में करोना की सुंदरता तथा कलात्मकता का आनंद उठाएं।

कुछ फूलों में फूल के शुरुआती विकास की अवस्था के दौरान पंखुड़ियां आड़ी (समकोण पर) फट जाती हैं;

कनेर: करोना देखना हो तो कनेर के फूल को देखें। विशेषरूप से गुलाबी कनेर। इसमें सामान्यतः पांच पंखुड़ियां होती हैं। इनकी आंतरिक सतह पर, फूल के केन्द्र में, प्रत्येक पंखुड़ी के ऊपर जो धागेनुमा रचनाएं लगी होती हैं वे ही इसका करोना है; जो एक चौड़े खुले कप के रूप में नज़र आता है।

अमरबेल: एक प्रसिद्ध परजीवी बेल, जिसे हम अमरबेल के नाम से जानते हैं। आमतौर पर हमारा ध्यान भी इस ओर नहीं जाता कि अमरबेल में फूल भी खिलते हैं। इस सुनहरी पीली धागेनुमा बेल पर पत्तियां तो नहीं होती पर समय आने पर ढेर सारे फूल ज़रूर लगते हैं। अमरबेल में खिलने वाले फूल में झालरदार करोना होता है।

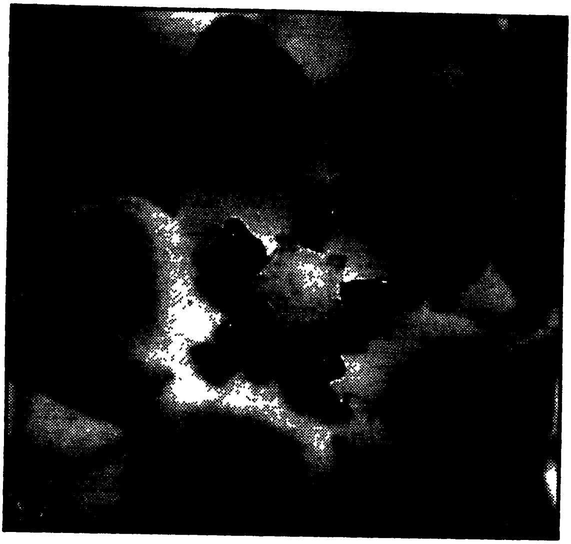

अकाव: करोना की बात तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक हम अपने आसपास की एक सामान्य जंगली झाड़ी अकाव (आकड़ा) की बात न करें। इसकी दो प्रजातियां हैं। एक छोटी झाड़ी जिसके फूल हल्के जामुनी होते हैं। दूसरी बड़ी झाड़ी जिसमें क्रीम रंग के बड़े फूल लगते हैं। दोनों में पुंकेसरीय ताज पाया जाता है। यहां जामुनी रंग वाले फूल की बात हो रही है। छोटे जामुनी फूल में पांच चौड़ी पंखुड़ियां होती हैं जिसके सिरे थोड़े ज़्यादा गहरे रंग के होते हैं। फूल के केन्द्र की ओर जो पांच सीधी खड़ी रचनाएं दिखती हैं वही इस फूल का करोना है। ये पार्श्वरूप से दबी हुई मांसल खोखली नलिकाएं होती हैं जो पुंकेसरीय नलिका से चिपकी रहती हैं। इसके नीचे के भाग में पतली नुकीली सींगनुमा संरचना (स्पर) होती है जिससे मकरंद (नेक्टर) स्रावित होता है। फूल के ठीक केन्द्र में सितारेनुमा पंचकोणीय रचना वर्तिकाग्र है।

जिससे फूलों पर पंखुड़ियों के अतिरिक्त एक और चक्र बन जाता है। यही अतिरिक्त चक्र करोना है। फूलों में करोना पंखुड़ी जैसा, शल्क लिए या रोएंनुमा हो सकता है। यह रचना पंखुड़ियों से जुड़ी हुई हो सकती है या अलग भी। इस तरह का करोना 'पंखुड़ीय करोना' कहलाता है। कुछ फूलों में करोना नर प्रजनन अंग पुंकेसर के सहयोग से बनता है, इसे 'पुंकेसरीय

कर्णफूलनुमा करोना: सफेद आकड़े में पंखुड़ियां ज़्यादा लंबी, हलकी हरी-सफेद और नीचे की ओर मुड़ी होती हैं। फूल के केन्द्र में ऊपर की ओर उठा हुआ कलात्मक भाग ही इसका करोना है। प्रत्येक करोना के नीचे का हिस्सा प्रतिकेन्द्रित होता है और ऊपरी हिस्सा चपटा। प्रत्येक करोना एक बहुत ही सुंदर कर्णफूल जैसी रचना है। इस फूल में सितारेनुमा रचना वर्तिकाग्र है।

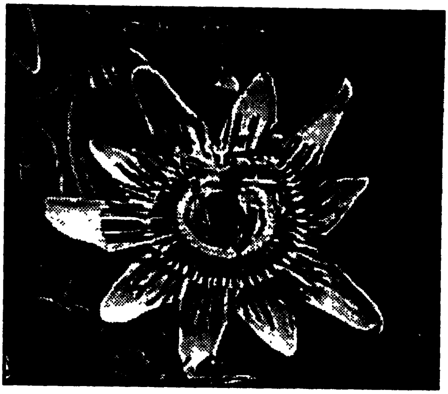

कौरव-पांडव: इसे आमतौर पर झुमकलता या 'राखी का फूल' कहते हैं। सुंदर चितकबरा एवं सूर्य की किरणों की तरह फैला हुआ जामुनी सफेद करोना, मिलता है। इसमें पांच पंखुड़ियां होती हैं जिनके ऊपरी हिस्से पर किरणों जैसा चक्रीय करोना लगा रहता है। कुछ लोग इसे कौरव-पांडव के नाम से भी जानते हैं। इसमें करोना ढेर सारी संख्या में होते हैं अतः इन्हें कौरव, व पांच पुंकेसरों को पांडव कहा जाता है। इस फूल की सुंदरता, रचना व रंग संयोजन वाकई गजब का है।

हल्दी-कुमकुम का करोना: परंतु सबसे सुंदर व रंगीन करोना तो मिलता है, हल्दी-कुंकू (काका तुंडी) के पौधों में। यह एक सामान्य सुंदर-सा पौधा है जिसे बगीचों में इसके सुंदर फूलों के लिए ही लगाया जाता है। वनस्पति विज्ञानी इसे एस्क्लेपिया कहते हैं। इसके फूल लाल-पीले रंग के होते हैं। इसमें पंखुड़ियां उल्टी छतरी के रूप में और करोना गहरे पीले रंग की पांच अंदर की ओर मुड़ी हुई रचनाओं के रूप में दिखता है। इसका करोना भी पुंकेसरीय है। करोना से एक-एक पीले रंग की सींगनुमा रचना भी निकली होती है जो मकरंद स्रावित कर संग्रह करती है। इसका हिन्दी नाम हल्दी कूंकू, सच में बड़ा सार्थक है।

लेकिन इस सुंदरता के साथ इसमें एक खतरा भी छिपा है, दूधिया रस के रूप में। इसमें केलोट्रोपीन नामक एक पदार्थ होता है जो बहुत ज़हरीला है। परंतु इसके इस ज़हर का उपयोग करते हुए, मोनार्क तितलियां अपने अंडे इस पर देती हैं जिससे ज़हर-बुझे यानी ज़हर लिए लार्वा एवं तितलियां पनपती हैं, जिन्हें शिकारी पक्षी नहीं खाते।

करोना' कहते हैं। दोनों ही करोना बहुत सुंदर होते हैं।

जग प्रसिद्ध फूल डेफोडिल में करोना कपनुमा होता है जो फूल के समस्त चक्रों के एकदम बीच में पाया जाता है। यह सुंदर गहरे पीले रंग का होता है। इस पर ही चक्र के रूप में छः पुंकेसर लगे होते हैं। इस कुल के सब फूलों में करोना होता है जो या तो पंखुड़ियों के रंग का या उससे ज़्यादा गहरा होता है।

पिछले पृष्ठों पर आपने कनेर, कौरव-पांडव, अकाव, हल्दी-कुमकुम के फूलों के करोना देखे ही हैं। अब जब आपको अकाव या हल्दी-कुंकू का पौधा नज़र आए तो उनके करोना ज़रूर देखें। आस-पास के अन्य फूलों में भी यदि करोना दिखे तो हमें ज़रूर बताएं।

किशोर पवार: इंदौर के होल्कर साइंस कॉलेज में वनस्पति विज्ञान पढ़ाते हैं।
सभी फोटोग्राफ: के. आर. शर्मा।

प्लेटफॉर्म पर खड़ी एक महिला

रस्किन बॉण्ड

बोर्डिंग स्कूल में यह मेरा दूसरा साल था। मैं अम्बाला स्टेशन के प्लेटफॉर्म नं. 8 पर बैठे-बैठे, उत्तर की ओर जाने वाली गाड़ी का इन्तज़ार कर रहा था।

उस वक्त मैं शायद बारह साल का रहा होऊंगा। मेरे माता-पिता मुझे अकेला सफर करने लायक समझते थे। मैं शाम को ही बस से अम्बाला पहुंच गया था। अब यहां आधी रात तक ट्रेन का इंतज़ार करना था। मेरा काफी वक्त प्लेटफॉर्म पर टहलते, किताबों के स्टॉल पर किताबों के पन्ने पलटते और फिर कुत्तों को बिस्कुट खिलाने में निकल गया। गाड़ियां आतीं और चली जातीं। प्लेटफॉर्म कुछ समय के लिए शांत रहता, फिर कोई गाड़ी आती तो शोरगुल शुरू हो जाता; लोगों का आना-जाना चालू हो जाता। हर बार जैसे ही गाड़ी के दरवाज़े खुलते, लोगों का एक रेला-सा आता और कुछ घबराए, कुछ बौखलाए, गेट पर खड़े टी. सी. को बहा ले जाता। उसके साथ-साथ मैं भी इसी भीड़ के बहाव में फंसकर

स्टेशन के बाहर पहुंच जाता।

आखिरकार इस खेल से और स्टेशन पर घूमने से तंग आकर मैंने अपना सूटकेस नीचे रखा और उस पर बैठ गया, रेल की पटरियों के पार, कहीं दूर नज़रें टिकाए। मेरे सामने से खूब सारे ठेले गुज़रते जा रहे थे। कानों में दही, शरबत, मिठाई, और अखबार बेचने वाले लड़कों – सभी की आवाज़ें लगातार गूंज रही थीं। पर मेरी अब इनमें कोई रुचि नहीं रह गई थी। मैं तो बस कुछ ऊबा हुआ, कुछ थका हुआ और अकेला महसूस करता हुआ, शून्य में नज़रें गड़ाए बैठा था।

"बेटा, क्या तुम अकेले हो?" मेरे पीछे से एक धीमी-सी आवाज़ आई।

मैंने ऊपर देखा तो एक महिला मेरे पास खड़ी थी। सादा-सा चेहरा, काली-गहरी आंखें। बिना किसी आभूषण के, वो बस साधारण-सी सफेद साड़ी पहने हुए थी।

"जी, मैं स्कूल जा रहा हूं," मैंने कहा और कहते-कहते खड़ा हो गया। वह गरीब लगती थी, परन्तु इतनी गरिमामयी कि अपने आप आदर का भाव पैदा हो जाए।

"मैं कुछ समय से तुम्हें देख रही हूं। तुम्हारे माता-पिता तुम्हें छोड़ने नहीं आए?"

"मैं यहां नहीं रहता," मैंने कहा। "और वैसे भी, मैं अकेले सफर कर सकता हूं।"

"मुझे यकीन है कि तुम अकेले सफर कर सकते हो," उन्होंने कहा। उनकी यह बात मुझे अच्छी लगी।

उनका साधारण-सा लिबास, गहरी, विनम्र आवाज़ और शांत चेहरा मुझे अच्छा लगा।

"अच्छा बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?" उन्होंने पूछा।

"अरुण," मैंने कहा।

"तुम्हें गाड़ी के लिए और कितनी देर रुकना होगा?"

"करीब एक घण्टा शायद। गाड़ी बारह बजे आती है।"

"तो मेरे साथ चलकर कुछ खा लो, आओ।"

मैं शक एवं शर्म के कारण मना करने वाला था। पर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे लगा कि अब हाथ छुड़ाना अच्छा नहीं लगेगा। एक कुली से मेरे सूटकेस का ध्यान रखने के लिए कहकर, वे मुझे प्लेटफॉर्म पर आगे ले गईं।

मेरे हाथ पर उनकी पकड़ न तो बहुत ढीली थी और न बहुत मज़बूत। मैंने फिर उनकी तरफ देखा। वे जवान

नहीं थीं और बूढ़ी भी नहीं थीं। तीस से तो ज़्यादा की होंगी; लेकिन अगर वे पचास की होतीं, तो भी शायद ऐसी ही दिखतीं।

वे मुझे स्टेशन की कैंटीन में ले गईं और वहां उन्होंने चाय, समोसे और जलेबी मंगवाई। मुझे अब उतना अटपटा नहीं लग रहा था और इस महिला के प्रति अब मेरी रुचि भी जागृत हो गई थी। इस अनोखी मुलाकात का मेरी भूख पर कोई असर नहीं पड़ा था। बिना भुक्खड़ दिखे जितना खा सकता था मैंने खा लिया। मुझे खाते देख उन्हें बड़ा आनंद आ रहा था। शायद खाने की वजह से ही हमारी दोस्ती पक्की हो गई। खाते-खाते मैं आराम से खुलकर बातें करने लगा। मैंने उन्हें अपने स्कूल, दोस्तों,

पसंद-नापसंद सबके बारे में बताया। बीच-बीच में वे धीरे से कोई सवाल पूछ लेतीं। पर ज़्यादा समय वे मेरी बातों को सुनती रहीं। उन्होंने मेरी झिझक तो भूला ही दी थी और साथ-साथ यह भी भुला दिया कि हम अजनबी थे। उन्होंने मेरे परिवार के बारे में कुछ नहीं पूछा, न ही घर के बारे में और मैंने भी उनसे इस तरह का कोई सवाल नहीं किया। वे जैसी थीं, मैंने उन्हें वैसे ही स्वीकार कर लिया था। शांत और नम्र स्वभाव वाली एक महिला, जिन्होंने रेल्वे प्लेटफॉर्म पर एक अकेले लड़के को समोसे और जलेबियां खिलाई थीं।

लगभग आधे घंटे बाद, हम कैंटीन से निकले और वापस प्लेटफॉर्म पर आ गए।

आठ नम्बर प्लेटफॉर्म के साथ की पटरी पर एक इंजन डिब्बों को इधर-उधर ले जाता हुआ आ-जा रहा था। जैसे ही इंजन सामने से गुज़रा, एक लड़का प्लेटफॉर्म से लपककर पटरियों को पार करने लगा। उसे दूसरे प्लेटफॉर्म तक जाना था। वह इंजन से काफी दूर था और अगर वह बिना गिरे पहुंच जाता तो उसकी जान को कोई खतरा भी नहीं था। पर उसके लपकते ही उस औरत ने मेरी बांह को ज़ोर से पकड़ लिया। उनकी उंगलियां इतने ज़ोर से गड़ रहीं थीं कि दर्द के मारे मेरी झुरझुरी छूट गई।

मैंने उनकी उंगलियों पर अपना हाथ रख दिया। उन्हें देखा तो उनके चेहरे पर दर्द, डर और उदासी की एक लहर-सी दौड़ गई थी। उन्होंने उस लड़के को दूसरे प्लेटफॉर्म पर चढ़ते देखा और फिर उस प्लेटफॉर्म की भीड़ में गुम होते। तब जाकर उनकी जान में जान आई और उन्होंने मेरी बांह छोड़ी। मुझे दिलासा देते हुए फिर मेरा हाथ पकड़ लिया, पर उनके हाथ कांप रहे थे।

"वो ठीक है," मुझे लगा कि दिलासे की ज़रूरत उन्हें है।

वे कृतज्ञता से मुस्कुराईं और मेरा हाथ दबाया। हम चुपचाप चलते हुए वहीं पहुंच गए जहां मैंने अपना सूटकेस रखा था। वहां पहुंचकर देखा कि मेरी ही स्कूल का एक और लड़का सतीश, जो मेरी ही उम्र का था, अपनी मां के साथ वहां खड़ा था।

"अरे अरुण!" उसने आवाज़ दी, "आज भी ट्रेन लेट है, हमेशा की तरह। क्या तुम्हें पता है इस साल नए हेड-मास्टर आने वाले हैं स्कूल में?"

हमने हाथ मिलाए। फिर उसने अपनी मां से कहा, "मां, यह अरुण है, मेरा दोस्त भी और कक्षा का सबसे

बढ़िया गेंदबाज़ भी।''

"बहुत खुशी हुई यह जानकर," उसकी मां ने कहा। वे बड़े-से चश्मे वाली रोबीली महिला थीं। उन्होंने मेरा हाथ पकड़े हुए औरत की ओर देखा और पूछा, "आप अरुण की मां हैं?"

मैंने कुछ कहने के लिए मुंह खोला ही था, पर इससे पहले ही उन्होंने हामी भरते हुए कहा, "हां, मैं अरुण की मां हूं।"

मैं कुछ न कह पाया। मैंने उनकी ओर देखा, पर उन्हें बिल्कुल भी अजीब

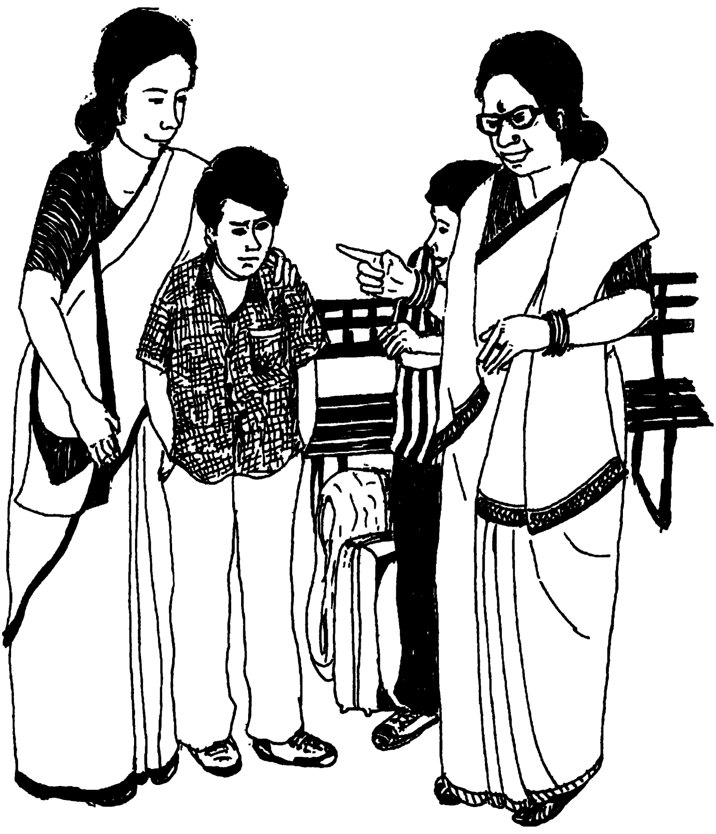

नहीं लग रहा था और वे मुस्कुरा रही थीं।

सतीश की मां बोली, "आधी रात तक ट्रेन का इंतज़ार करना तो खासा सिरदर्द ही है। पर बच्चे को अकेला भी तो नहीं छोड़ सकते। इतने बड़े स्टेशन पर कुछ भी हो सकता है। इतने अजीब लोग घूमते रहते हैं। आजकल अनजान लोगों से तो बचकर ही रहना चाहिए।"

"वैसे अरुण अकेले सफर कर सकता है," मेरे साथ खड़ी औरत ने कहा। और मैं उनकी इस बात के लिए शुक्रगुज़ार था। झूठ बोलने के लिए मैं मन-ही-मन उन्हें माफ भी कर चुका था। वैसे भी सतीश की मां मुझे अच्छी नहीं लगी थीं।

"अरुण, सावधान रहना," उन्होंने मुझे अपने चश्मे में से देखते हुए कहा। "अजनबियों से तो कभी बात भी न

करना और जब मां साथ न हो, तो अपना विशेष ध्यान रखना।"

मैंने उन्हें देखा, फिर उस औरत को देखा जिसने मुझे चाय और नाश्ता खिलाया था, और फिर वापस सतीश की मां को देखा। मैंने कहा, "लेकिन मुझे अजनबी पसंद हैं।"

सतीश की मां को थोड़ा धक्का तो लगा, क्योंकि उन्हें बच्चों से जवाब सुनने की आदत नहीं थी। "ये लीजिए, अगर सारा समय ख्याल न रखो, तो किसी झमेले में पड़ जाएं," उन्होंने मेरी तरफ उंगली तानते हुए कहा, "हमेशा अपनी मां की बात सुनना, और अजनबियों से कभी बात मत करना।"

मैंने उनकी ओर गुस्से से देखा और अपनी 'मां' के थोड़ा और पास खिसक गया। सतीश अपनी मां के पीछे खड़ा, मुझे देखकर हंस रहा था और यह सब देखकर उसे बहुत खुशी हो रही थी। शायद वो भी मेरे पक्ष में था।

स्टेशन की घंटी बजी। अभी तक जो लोग आराम से प्लेटफॉर्म पर बैठे थे, वे सब उठकर चलने-फिरने लगे।

"गाड़ी आ गई," सतीश ने कहा। इंजन की सीटी सुनाई दी और उसकी रोशनी पटरियों पर पड़ रही थी।

ट्रेन प्लेटफॉर्म पर आई और छुक-छुक करते इंजन ने ढेर सारी भाप छोड़ी।

जैसे ही ट्रेन रुकी, सतीश लपक कर एक डिब्बे में चढ़ गया और बोला, "चलो अरुण, यह डिब्बा खाली है।" मैंने भी अपना बैग उठाया और दरवाज़े की ओर दौड़ा।

हम दोनों दो खुली खिड़कियों के पास बैठ गए। दोनों औरतें बाहर प्लेटफॉर्म पर खड़ीं हमसे बातें करती रहीं। सतीश की मां ही ज़्यादा बोल रही थीं।

उन्होंने कहा, "जैसे अभी चलती ट्रेन में चढ़ गए, फिर ऐसे मत करना। खिड़की के बाहर सिर मत निकालना और रास्ते भर कुछ भी मत खाते रहना।" यह नसीहत वे मुझे भी दे रही थीं क्योंकि शायद मेरी 'मां' ऐसा कहेगी इसकी उन्हें उम्मीद नहीं थी। उन्होंने सतीश को फल का एक झोला, एक बल्ला और चॉकलेट का एक डिब्बा थमाया और मेरे साथ बांटकर खाने को कहा। फिर थोड़ा पीछे होकर खड़ी हो गई, देखने के लिए कि अब मेरी 'मां' क्या कहती है।

मुझे सतीश की मां के व्यवहार पर थोड़ा गुस्सा आ रहा था। वे तय कर चुकी थीं कि मेरा परिवार काफी गरीब है; और मैं उस दूसरी औरत की सच्चाई नहीं बताना चाहता था। मैंने उन्हें मेरा

हाथ पकड़ने दिया, पर कुछ कह न सका। मैं भली-भांति जानता था कि सतीश की मां हमें घूर रही हैं और उनके प्रति मेरी नफरत एकदम बढ़ती जा रही थी। इतने में गार्ड ने प्लेटफॉर्म पर आकर सीटी बजा दी। मैंने उस औरत की आंखों में देखा – वे मुस्कुरा रही थीं – जैसे सब समझ रही हों। मैंने खिड़की के बाहर सिर निकाला और उनके गाल को चूम लिया।

डिब्बा हल्के से झटके के साथ चलने लगा और उन्होंने अपना हाथ पीछे खींच लिया।

"टाटा मां!" सतीश ने कहा। ट्रेन धीरे-धीरे से स्टेशन के बाहर खिसकने लगी थी। सतीश और उसकी मां एक-दूसरे को हाथ हिला रहे थे।

मैंने उस औरत से कहा, "टाटा, मां..." मैंने हाथ नहीं हिलाया, न ही मैं चिल्लाया। बस खिड़की में से उस औरत की ओर देखता रहा, जो प्लेटफॉर्म पर खड़ी थी। सतीश की मां उनसे कुछ कह रही थी, पर उनका ध्यान बातों में नहीं था। वे मुझे देख रही थीं। सफेद कपड़े पहने वह औरत प्लेटफॉर्म पर खड़ी थी; और मैं उन्हें देखता रहा, जब तक कि वे नज़रों से ओझल नहीं हो गईं।

रस्किन बॉण्ड 1934 में हिमाचल के कसौली कस्बे में पैदा हुए थे और जामनगर (गुजरात), देहरादून और शिमला में बड़े हुए। पैंतीस साल के उनके लिखने के केरियर के दौरान उन्होंने सौ से ज़्यादा कहानियां व बच्चों के लिए तीस से ज़्यादा किताबें लिखीं। उन्हें 1992 में साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला।

अनुवाद: शिवानी बजाज। दिल्ली स्थित 'निरंतर' संस्था के साथ काम करती हैं।

चित्र: विप्लव शशि। वड़ोदरा में चित्रकला का अध्ययन कर रहे हैं।

शून्य डिग्री देशांतर रेखा

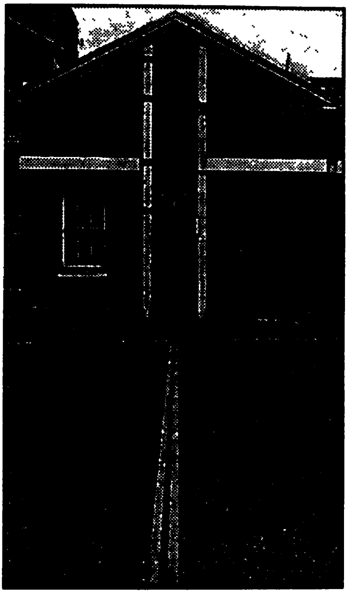

ग्रीनविच की प्रयोगशाला के पास से गुज़रती शून्य डिग्री देशांतर रेखा। रेखा से दाहिनी ओर पूर्वी गोलार्द्ध है तो रेखा के बायीं ओर पश्चिमी गोलार्द्ध है।

इस पृथ्वी पर विभिन्न भूभागों की अक्षांश -देशांश में स्थितियां तय करने के लिए दो मानक रेखाओं की ज़रूरत थी। एक जो धरती पर उत्तर-दक्षिण दिशा में मूल रेखा का काम कर सके। और दूसरी, जो पूर्व-पश्चिम में यह भूमिका निभा सके।

पहली भूमिका में तो भूमध्य रेखा को यह दर्ज़ा मिले इस में कोई विवाद नहीं था, लेकिन शून्य डिग्री देशांतर रेखा तो कोई भी देशांतर हो सकती थी। ब्रिटेन ग्रीनविच से गुज़रने वाली देशांतर रेखा को शून्य मानकर उसके आधार पर पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों की स्थितियां और समय की गणना करता था; तो फ्रांस और जर्मनी क्रमशः पेरिस और बर्लिन से गुज़रने वाली देशांतर को शून्य मानकर गणनाएं करते थे।

एकरूपता के हिसाब से यह ज़रूरी था कि दुनिया के सभी देश किसी एक देशांतर पर अपनी आम राय कायम कर सकें। इसके लिए 1884 में वाशिंगटन में एक बैठक हुई। इस बैठक में ग्रीनविच को शून्य डिग्री देशांतर रेखा मानने पर आम सहमति बनी। ग्रीनविच को चुनने के पीछे चाहे जो भी राजनैतिक कारण रहे हों लेकिन 16वीं सदी में ग्रीनविच वेधशाला की स्थापना ही देशांतर पता करने की विधियों को विकसित करने के लिए की गई थी। ग्रीनविच के चुनाव का एक अन्य कारण भी था – 1884 में दुनिया के समुद्रों में जितना भी यातायात था उसका लगभग तीन-चौथाई ग्रीनविच को शून्य डिग्री मानकर हो रहा था। जहाज़ों पर मौजूद नक्शे, तालिकाएं, घड़ियां ग्रीनविच को आधार मानकर बनाए गए थे। ऐसे में ग्रीनविच को शून्य डिग्री देशांतर मानना शायद एक व्यावहारिक कदम भी था।

आज ग्रीनविच की वेधशाला वहां से स्थानांतरित हो गई है, इमारत ज़रूर वहीं खड़ी है और शून्य डिग्री की रेखा भी वहीं मौजूद है। चित्र देखिए।

संदर्भ सजिल्द संस्करण

हर जिल्द में हैं:

भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र,
प्राणी व्यवहार, सूक्ष्मजैविकी, गणित, इतिहास,
भूगोल-भूविज्ञान, वैज्ञानिकों की जीवनियां,
पढ़ाने के तरीके, बच्चों के साथ अनुभव,
प्रयोग-मॉडल एवं गतिविधियां,
सर्वे रिपोर्ट, कहानियां, पहेलियां
और
सवालीराम के सवाल-जवाब

संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25, 26-30 और 31-36 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं। इनके साथ है प्रकाशित अंकों का विषयवार इंडेक्स।

प्रत्येक का डाक-खर्च सहित मूल्य 65 रु.।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र, 461001
ई - मेल: eklavyahoshangabad@bigfoot.com

एकलव्य
ई-7/453 एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

अंधा सांप

सांपों की बिरादरी में एक सांप ऐसा भी है जिसमें आंखें दो काले धब्बों की तरह होती हैं, जो शल्कों से ढंकी होती हैं। और रही बात बात नज़र की तो यह सांप इन आंखों से सिर्फ अंधेरे-उजाले का फर्क ही कर पाता है।

के. आर. शर्मा

सांप का नाम सुनते ही जेहन में भुजंग तथा फनधारी सांपों का डरावना चित्र उभर आता है। लेकिन सांपों की दुनिया की सच्चाई इतनी ही नहीं है। सच तो यह है कि सांपों की दुनिया में जहां एक से एक विषधारी सांप हैं वहीं विषहीन सांप भी हैं। विषहीन सांप के समूह का एक सदस्य है 'अंधा सांप'।

बरसात के दिनों में आपने केंचुए के रंग-रूप का कोई जीव, नम मिट्टी में कुलबुलाते देखा होगा। कई बार तो यह घरों में भी दिख जाता है। इसको देखकर आप ज़रा भी भयभीत नहीं हुए होंगे। बेशक, केंचुए-सा दिखने वाला यह सांप, सांप होते हुए भी खुद अपनी डरावनी तस्वीर पेश नहीं करता। इस सांप का नाम है अंधा सांप। अंधे सांपों की दुनिया बड़ी ही निराली है। आइए डालते हैं एक नज़र अंधे सांपों पर।

अंधे सांप बनाम आंख वाले सांप

ऐसा माना जाता है कि अंधे सांप सर्प परिवार के सबसे पुराने सांपों में से हैं। अंधे सांपों के वंश के ज़्यादातर सांप, आकार में छोटे एवं नाजुक, चिकनी तथा चमकीली चमड़ी वाले होते हैं। इनकी आंखें दो काले धब्बे जैसी होती है एवं शल्कों से ढंकी होती हैं। लेकिन ये इतनी छोटी होती हैं कि इन्हें हैंडलेंस से देखना ही मुमकिन हो पाता है। इनकी दृष्टि भी काफी कमज़ोर होती है,यहां तक कि ये केवल अंधेरे और उजाले का फर्क भर कर पाते हैं।

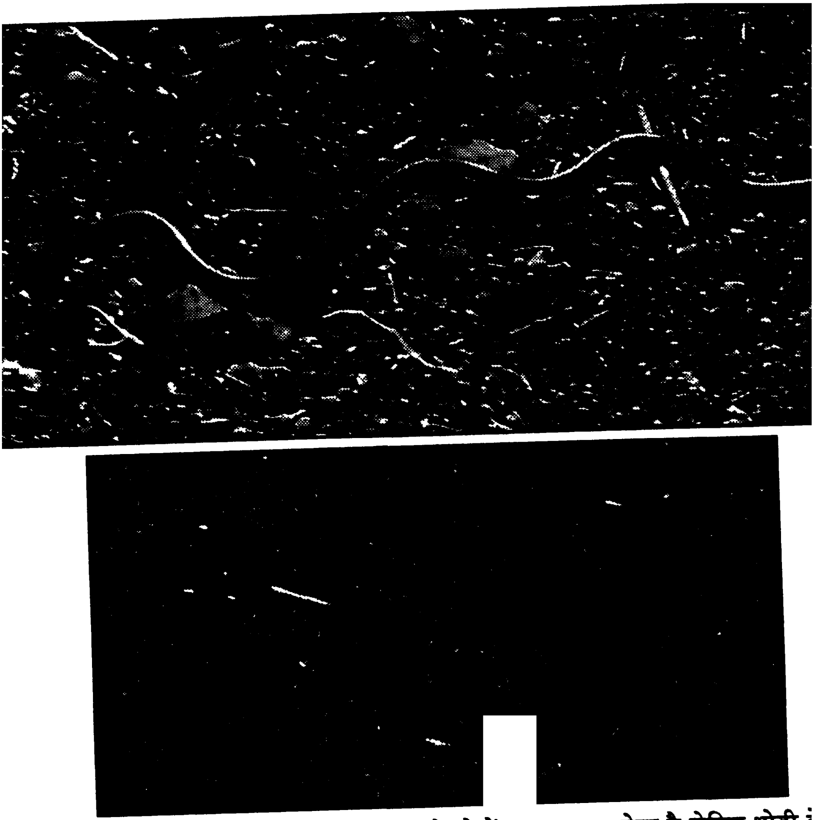

केंचुए का भ्रम: अंधे सांप को देखने पर पहले तो केंचुए का भ्रम होता है लेकिन थोड़ी
तक देखते रहने पर यह भ्रम टूटने लगता है। वैसे यदि कभी मौका मिले तो आप लैंस
मदद से केंचुआ देखिए, उसका गीला-सा शरीर खंडों में बंटा हुआ होता है। अंधे सांप
शरीर खंड़ों में बंटा हुआ नहीं होता। आमतौर पर अंधा सांप भी उन्हीं जगहों में रह
पसंद करता है जहां केंचुए रहते हैं।

दुनिया का सबसे छोटा सांप

दुनिया भर में अंधे सांपों की लगभग 200 प्रजातियां देखी गई हैं। हमारे यहां अंधे सांपों की 14 प्रजातियां देखी गई हैं। दुनिया भर के सांपों में अंधे सांप की एक प्रजा "कॉमन वॉर्म स्नेक" का सांप सब छोटा है। दुनिया भर के सांपों में अज (रीगल अजगर) सबसे लंबा सांप इसकी अधिकतम लंबाई 10 मी

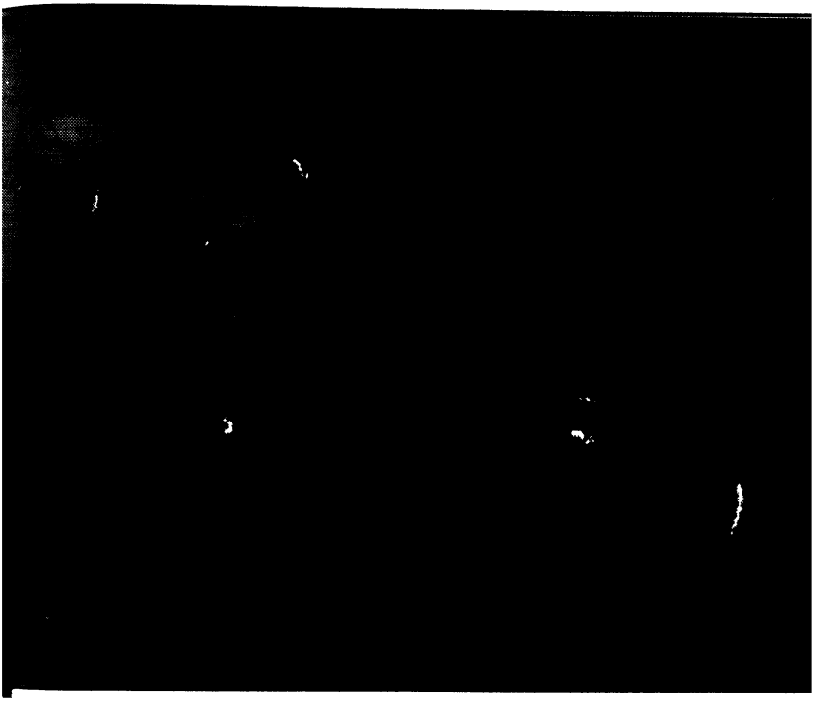

चोंचदार अंधा सांपः वैसे तो अंधे सांप की लम्बाई कुछ सेंटीमीटर तक होती है। यहां अंगुलियों में गुथा हुआ सांप चोंचदार है जो सिर्फ 44 सेंटी मीटर लंबा है। इस सांप को थोड़ा गौर से देखने पर सांप पर शल्कों को देखा जा सकता है।

तक हो सकती है। वहीं अंधे सांप की अधिकतम लंबाई 17 से.मी. तक हो सकती है जो सभी सांपों में सबसे कम लंबाई है।

बात छोटे-बड़े की चली है तो यहां यह भी बताना लाज़िमी होगा कि अंधे सांपों में सबसे लंबा सांप है चोंचदार अंधा सांप, जो मुझे दो-तीन महिने पहले ही दिखाई दिया था। इस सांप को मैंने पकड़कर अपने पास रखा और उसकी लंबाई 44 से.मी. नापी गई। वैसे चोंचदार अंधे सांप की अधिकतम लंबाई 60 से.मी. तक हो सकती है। अंधे सांप को सरसरी तौर पर देखने पर केंचुए का भ्रम होता है। इसका रहवास भी लगभग वही है जो केंचुए का होता है। पर थोड़ा-सा भी ध्यान से देखें तो उनको पहचाना जा

सकता है। केंचुए का शरीर खंडित और गीला होता है जबकि सांप का शरीर अखंडित, सूखा और चिकना होता है।

अंधे सांप ज़मीन के नीचे चींटियों और दीमक के बिलों में, सड़ रही पत्तियों के नीचे, रहते हैं।

चोंचदार अंधा सांप

जो सांप मुझे मिला वो चोंचदार अंधा सांप है। इसकी ऊपरी सतह कत्थई रंग की तथा निचली छाती वाली सतह हल्के गुलाबी रंग की होती है। इसका सिर नुकीला होता है जो चोंच का आभास देता है। यही कारण है कि इसको चोंचदार अंधा सांप कहा जाता है।

चोंचदार अंधा सांप भी अन्य सांपों की तरह अपनी जीभ को लपलपाता है। अंधे सांपों की कई प्रजातियां नम ज़मीन में मिलती हैं। पर चोंचदार अंधे सांप को मैंने तीन-चार बार प्रकृति में देखा, तो वह मुझे सूखी ज़मीन पर ही विचरण करते हुए दिखा।

अंधे सांपों की एक खासियत यह होती है कि इनमें नर होते ही नहीं। सभी मादा होती हैं। यानी कि अंधी मादा सांप बिना नर के समागम के ही अंडे देती है। अंडों से जो बच्चे निकलते हैं वे भी सभी मादा सांप के रूप में ही पनपते हैं।

अंधे सांप दुनिया भर में व्यापक तौर पर पाए जाते हैं। गुलदस्तों-गमलों के माध्यम से ये दुनिया भर में पहुंच गए हैं। यहां तक कि सर्वविहीन द्वीप समूह लक्षद्वीप, न्यूजीलैंड तथा हवाई में भी। पर फिर भी अंधे सांपों के बारे में अभी काफी सारे प्रश्न अनुत्तरित हैं। मसलन ये कब अंडे देते हैं, इनका व्यवहार क्या है? आदि।

के. आर. शर्मा: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध। उज्जैन में रहते हैं।
इस लेख के **सभी फोटोग्राफ: के. आर. शर्मा।**

एकलव्य की ओर से राजेश खिंदरी द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य ई-7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 से प्रकाशित। संपादक-राजेश खिंदरी

127.39